संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : ११
अंक : ९८
फरवरी २००१
हिन्दी

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् । उज्जयिन्यां महाकालमोमकारममलेश्वरम् ॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशंकरम् । सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यंबकं गौतमी तटे । हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये ॥
एतानि ज्योतिर्लिंगानि सायं प्रातः पठेन्नरः । सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : ११
अंक : ९८
९ फरवरी २००१

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 25
(२) पंचवार्षिक : US $ 100
(३) आजीवन : US $ 250

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
E-Mail : ashramamd@ashram.org
Web-Site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

काव्यगुंजन

घर तो पहुँचा देना...

बीता बचपन ढलती जवानी, जग से अब क्या लेना ?
सांझ से पहले गुरुदेव प्यारे, घर तो पहुँचा देना ॥
करुणासिंधु हे ! चरणों की तेरे आस लगाये हैं नैना।
विरहा की लम्हें कटती नहीं जो, तुम्हीं प्राण तुम्हीं चैना।
बाँध लिया काल बंधन दुनियाँ का, अब तुम्हीं छुड़ा लेना ॥
सांझ से पहले...
उबारो पिता निशि-नश्वर से, 'स्व' में स्थिति मैं पाऊँ।
सच्चा पुत्र तेरा बन पाऊँ, गीत तेरे ही गाता जाऊँ।
भूलें भुला देना बाँह न छोड़ना, चरणों का आश्रय देना ॥
सांझ से पहले...
दर तेरे दाता दास बना रहूँ, प्रेम पिंजड़े की मैना।
हर सांस में नाम तेरा हो, दर्शन पाऊँ दिन रैना।
शरणागत हूँ हे मात-पिता ! तुम्हीं मेरी सुधि लेना ॥
सांझ से पहले...
कृपा करना यूँ आँधी विकारों की, कभी मुझे छू न पाए।
सेवा-साधना के सावन में, हे दाता ! जीवन खिल जाए ॥
दया अमीमय निगाहों की, हे पिता ! कृपापात्र बना लेना।
ये प्राण तो तेरे हैं गुरुवर ! मेरे घर तो पहुँचा देना ॥

- नारायण चंद्र त्रिपाठी
जि. सोलन (हि. प्र.).

*

सच्चा परचा

सच्चा मालिक वही जगत में, उसका ही सच्चा परचा है।
समय निकालो उसकी श्रद्धा का, नहीं इसमें कोई खर्चा है॥
अनंत गुण उसमें समाये, सबसे ऊँचा उसका दर्जा है।
सभी समान हैं उसके लिये, ऐसा उसका नरजा है॥
जो भी जाता द्वार पर उसके, नाम से उसके तरजा है।
सूरज चाँद सितारे उसके, बिजली में वही लर्जा है॥
सर्वव्यापी वही अकेला, उसी की सब जगह चर्चा है।
राहत मिलती उसके नाम से, सभी उसकी परजा है॥
आधि व्याधि थर्रावे उसके नाम से, सभी को उसने सरजा है।
खिवैय्या है पूरे ब्रह्माण्ड का सभी में इकला भरजा है॥
मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, चर्च, तीर्थ में बादलों में भी वह गरजा है।
फूलों में महक भी उसका, रंगों में उसीकी ऊर्जा है॥

- सुलतान सिंह जैन
आविष्कारक, वैज्ञानिक एवं लेखक
रूड़की (उ. प्र.).

*

आत्म अमर बेल है प्यारी

आत्म अमर बेल है प्यारी, शाश्वत सदा है न्यारी।
घटे बढ़े ना उपजे लीन हो, कैसी अद्भुत क्यारी ?
नैनों से देखे ना कोई, मन-बुद्धि से जाने नहीं।
ज्योतिस्वरूप ज्योतिर्मय है, सूक्ष्मतर चिनगारी ॥
जड़ जीव जन्तु मानव में, सुर असुर देव दानव में।
निर्लेप सदा अनादि अनंत है, महिमा जिसकी भारी॥
नाम रूप रस रंग न कोई, अंग संग बेरंग है सोई।
ओतप्रोत है सर्वव्यापक, अखंड चेतना सारी॥
रोम रोम हर कण कण में, श्वास श्वास हर स्पंदन में।
शाश्वत सत्य सनातन है, महके ज्यों फुलवारी॥
गुरुज्ञान ध्यान भक्ति में, जल थल नभ पराशक्ति में।
आनंदमय मुक्तस्वरूप है, यार की सच्ची यारी ॥
अजर अमर आत्म अविनाशी, दिव्य परिपूर्ण सुखराशी।
चैतन्यमय है स्वयं प्रकाशी, जिसकी बलिहारी 'साक्षी' ॥

- 'साक्षी', अमदावाद।

कुछ भी नहीं मैं कर सकूँ, करता सभी विश्वेश है।
ऐसी समझ उत्तम महा, सच्चा यही आदेश है॥
पूरा करूँगा कार्य यह, वह कार्य मैंने है करा।
पूरा यही अज्ञान है, अभिमान यह ही है खरा॥
'मैं' क्षुद्र है, 'मेरा' बुरा, 'मुझ' भी मृषा है त्याग रे।
अपना पराया कुछ नहीं, अभिमान से हट भाग रे॥
यह मार्ग है कल्याण का, हो जाय तू निष्पाप रे।
देहादि 'मैं' मत मान रे, 'सोऽहं' किया कर जाप रे॥

(आश्रम की 'आत्मगुँजन' पुस्तक से)

मन-बुद्धि को परमात्मा में लगायें...

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

'श्रीमद्भगवद्गीता' में आया है :

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

'मुझमें मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा। इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।' (गीता : १२.८)

भगवान यहाँ जो 'मुझमें' शब्द बोलते हैं वह रथ पर विराजमान विग्रह के लिये नहीं बोलते, अपितु समग्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त एवं आकाश से भी सूक्ष्म जो चिदानंद स्वरुप है, समस्त प्राणियों के अंतःकरण में जो आत्मरूप से स्थित है उसको लक्ष्य करके 'मुझमें' शब्द का प्रयोग करते हैं।

शिष्य जब गुरुदेव से कहता है कि : 'गुरुदेव ! आप कण-कण में विद्यमान हैं...' तो इसका अर्थ यह नहीं है कि गुरुदेव का शरीर कण-कण में घुस गया है। नहीं, जो गुरुतत्त्व है वह कण-कण में, जर्रे-जर्रे में छुपा है। जो गुरुदेव को शरीर मानेगा, वह स्वयं शरीर से पार कैसे जायेगा ? जो भगवान को देहधारी मानेगा, वह देह के बंधन से कैसे मुक्त होगा ?

भगवान और सद्गुरु देह में होते हुए भी देह से परे हैं। श्रीमद् आद्य शंकराचार्य ने कहा है :

अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

भगवान कहते हैं : 'तू मुझमें मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा।' वास्तव में देखा जाये तो मन और बुद्धि भगवान के सिवाय कहीं लग भी नहीं सकते हैं क्योंकि भगवान के सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं। सृष्टि के आदि में भगवान, अंत में भगवान... तो अभी जो है, वास्तव में भगवान ही है लेकिन माया के कारण हम जान नहीं पाते।

भगवान की माया विवर्त दिखाती है। जो विवर्त है उसीको संसार बोलते हैं और संसार सरकता जाता है अर्थात् बदलता जाता है। धातु वही-की-वही, लेकिन नाम और रूप बदलते जाते हैं, इसीका नाम माया है। माया में स्थिरता नहीं है, शाश्वत सुख नहीं है, नित्य परिवर्तन है।

परिवर्तन जिसके आधार पर होता है वह है आधार और जिसमें परिवर्तन होता है वह है आधेय। जैसे, पानी में काई जम जाती है तो काई का आधार है पानी और आधेय है काई। आधेय काई अपने आधार पानी को ढँक देती है। ऐसे ही माया आधेय है और परमात्मा आधार है। काई पानी से पैदा होती है, पानी को ही ढँकती है और पानी में ही रहती है तथा उसमें जन्तु भी होते हैं। जन्तुओं में भी पानी के अंश होते हैं, काई में भी पानी के अंश होते हैं और मूल में भी पानी होता है। ऐसे ही मूल में परमात्मा, माया में भी चेतना परमात्मा की और माया से उत्पन्न हुए जीव में भी चेतना परमात्मा की होती है।

कबीरजी ने कहा है :

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलै समाना, यह अचरज है ज्ञानी॥

ईश्वर का पूर्ण ज्ञान होने पर ज्ञानी का आचरण कैसा होता है ? घड़े में पानी और पानी में घड़ा... घड़े की आकृति को विचार से तोड़ दें तो बाहर-भीतर केवल पानी ही होता है। ऐसे ही देह को 'मैं' मानने की मन-बुद्धि की जो बेवकूफी है उसे हटाकर, देह के भीतर और बाहर व्यापक चिदाकाश जो चैतन्य है उसमें मन-बुद्धि लगा दें तो फिर आप भगवान से अलग नहीं रहते और भगवान आपसे अलग नहीं रहते।

भगवान कहते हैं :

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

अर्थात् 'तू मेरे में मन और बुद्धि को लगा।'

जब 'मन' बोलते हैं तब मन के साथ चित्त को मान लेना चाहिए। 'बुद्धि' बोलते हैं तब उसके साथ अहंकार को भी समाविष्ट कर लेना चाहिए। वैसे अंतःकरण चतुष्ट्य कहा जाता है : मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। मन में चित्त का समावेश और बुद्धि में अहंकार का समावेश करना। जब मन-बुद्धि को भगवान में लगा देंगे तब स्वयं भगवन्मय हो जायेंगे।

यदि मन-बुद्धि नश्वर देह और नश्वर संसार में लगे हैं तो फिर कितना भी तप करें, व्रत-उपवास करें, उसका फल नश्वर ही होगा। मन-बुद्धि जहाँ से उत्पन्न होते हैं उस चैतन्यस्वरूप परमात्मा को 'मैं' मानकर उसमें लगे रहे तो फल शाश्वत होगा।

नानकजी ने ठीक ही कहा है :

देखत नैन चल्यो जग जाई। का माँगूँ कछु थिर न रहाई॥

'संसार में ऐसी कोई चीज नहीं है जो स्थिर रहे, तो भगवान से क्या माँगें ?'

''भगवान ! जिसमें हमारा मंगल हो और जो आपको उचित लगे, वही दीजिये।''

भगवान कहेंगे : ''तुम मुझमें मन-बुद्धि को लगा दो तो तुम और हम एक हो जायेंगे। अद्वैत ज्ञान हो जायेगा।''

यह आसान भी है और शाश्वत भी है। केवल काई जहाँ से पैदा हुई है और काई ने जिसको ढाँक दिया है उसको जानना है।

किन्हीं साधु बाबा के पास आकर एक व्यक्ति ने पूछा : ''महाराज ! मैं बड़ा प्यासा हूँ। थक गया हूँ। आगे पानी है ?''

महाराज : ''बेटा ! पानी है। बहुत शीतल और स्वच्छ है। प्यास बुझ जायेगी।''

''महाराज ! यहाँ से कितना दूर है ?''

''बेटा ! बायें हाथ की ओर सौ कदम की दूरी पर है। लेकिन हरा-हरा सा दिखेगा क्योंकि काई से ढँका है। पानी शुद्ध है।''

वह व्यक्ति गया, देखा तो कहीं पानी नहीं दिखा। फिर याद आया कि काई (शैवाल) से ढँका है। कुछ हरा-हरा सा दिखा। निकट गया, काई को हटाया और चुल्लू भर पिया तो शीतल, अमृत जैसा जल ! पेट भर पिया और अपनी प्यास बुझाई। थका तो था ही। तालाब के किनारे एक वृक्ष के नीचे थकान मिटाने के लिये थोड़ी देर बैठा। जल तो पुनः काई से ढँक गया लेकिन अब उस व्यक्ति को जल का अज्ञान नहीं है क्योंकि उसने काई को हटाकर जल का अनुभव कर लिया है। ऐसे ही केवल तीन मिनट के लिये अज्ञान की काई हट जाये एवं गुरुकृपा से साधक परमात्म-तत्त्व का अनुभव कर ले तो फिर भले बाहर से अज्ञानी की नाँईं संसार का व्यवहार करता दिखेगा लेकिन भीतर से उस अनुभव से तृप्त रहेगा। बाहर से ब्रह्म भले ढँका-सा दिखेगा लेकिन जैसे जब चाहे तब वह व्यक्ति काई हटाकर जल पी सकता है, वैसे ही वह ज्ञानी पुरुष जब चाहे तब अंतरात्मा में गोता मारकर आत्मानुभव कर लेगा। कितना आसान है !

जब चाहें तब प्रधानमंत्री से मुलाकात नहीं हो सकती, जब चाहे तब सेठ को नौकर भी नहीं मिल सकता लेकिन वह परमात्मा सदा-सर्वत्र मिला हुआ ही है। मध्य रात्रि को शांत होकर बैठ गये तब भी उसका अनुभव, उसके रस में सराबोर... सुबह, दोपहर, शाम को भी सराबोर... देश-परदेश में, बीमारी-तंदुरुस्ती में, गृहस्थी-संन्यासी में... जब चाहो तब उस परमात्मा के रस में सराबोर हो सकते हैं।

एक गृहस्थ संत थे। वे आस-पास के लोगों को बगीचे में बैठाकर सत्संग सुनाते थे कि : 'शरीर नश्वर है, पाँच भूतों का पुतला है। जो भी पैदा होता है वह अवश्य मरता है किन्तु आत्मा अमर है। घड़े बनते हैं, फूटते हैं लेकिन आकाश ज्यों-का-त्यों रहता है। ऐसे ही शरीर जन्मता-मरता है लेकिन आत्मा ज्यों-की-त्यों रहती है। अपने को आत्मा मानो। मन-बुद्धि को भगवान में लगाओ। संसार की मोह-माया में मत फँसो।'

एक दिन उनका पोता मर गया। वे संत घर जाकर छाती कूटने लगे कि : 'बेटा ! तू क्यों चला गया ? तेरे बिना हम कैसे जियेंगे ?' ऐसा कहकर वे इतना रोये, इतना रोये कि उनका बेटा एवं उनकी बहू जो पुत्र-शोक में रो रहे थे, वे उन्हीं को चुप कराने लगे।

फिर बेटे की अंतिम क्रिया की, स्नानादि किया एवं पिता को खाना बनाकर खिलाया। पिता तो संत थे लेकिन वे लोग उनको नहीं जानते थे। पड़ोसी भी उन्हें अपना मित्र मानते थे। किसीने पूछ लिया :

''भाई ! आप बातें तो बड़ी-बड़ी करते हैं कि 'शरीर नाशवान् है, आत्मा अमर है।' हमको तो उपदेश देते हैं और आपके पोते का देहांत हो गया तो आप इतना रोये कि आपके बहू-बेटे भी आपको चुप कराने लगे।''

संत : ''अभी छोड़ो। बहू की सहेलियाँ और बेटे के मित्र सुन लेंगे। बाद में बतायेंगे।''

फिर समय पाकर सब बगीचे में मिले तब संत ने कहा : ''मैं उस दिन समझकर रोया था। बेटे का इकलौता बेटा मर गया था। माँ-बाप दोनों रो रहे थे। यदि मैं उनको चुप कराने जाता तो वे और रोते कि 'आपको क्या है ? हमारा इकलौता बेटा मर गया, हमारे तो मानों, प्राण ही चले गये हैं...' ऐसा करके वे ज्यादा रोते। मैंने सोचा, उनको चुप कराने के लिये रोने में अपने को घाटा भी क्या है ? मैं समझकर रो रहा था तो दुःख नहीं हो रहा था। वे मोह से रो-रोकर अपना बुरा हाल कर लेते।''

रंगमंच पर कोई भिखारी की भूमिका अदा करता है कि : 'दे दो, कोई पाँच-दस पैसे दे दोऽऽऽ... तुम्हारे बाल-बच्चे सुखी रहेंगे...' वही व्यक्ति रंगमंच से उतरने के बाद आराम से चाय-नाश्ता करता है और १०० रूपयों की नोट जेब में डालकर मजे से रह लेता है। लेकिन उसका अभिनय ऐसा होता है कि दर्शक को लगता है कि 'हम सब उसे १-१ रूपया दे देवें।'

जो समझकर रोता है उसे दुःख के समय भी कोई दुःख नहीं होता।

अष्टावक्रजी महाराज राजा जनक से कहते हैं :

संतुष्टोऽपि न सन्तुष्टः खिन्नोऽपि न च खिद्यते।
तस्याश्चर्यदशां तां तां तादृशा एव जानते ॥

'धीर पुरुष संतुष्ट होकर भी संतुष्ट नहीं होता है और दुःखी होकर भी दुःखी नहीं होता है। उसकी इस आश्चर्यमय दशा को वैसे ज्ञानी ही जानते हैं।'

(अष्टावक्र गीता : १८.५६)

ऐसे महापुरुष शरीर के जीवन को अपना जीवन नहीं मानते और शरीर की मौत को अपनी मौत नहीं मानते क्योंकि उन्होंने अपने मन-बुद्धि को चैतन्यस्वरूप परमात्मा में लगा दिया है। उन्होंने समझ लिया है कि : 'जिसकी मौत होती है वह मैं नहीं हूँ और जो मैं हूँ उसकी कभी मौत नहीं होती।'

कुछ लोग मानते हैं कि : 'इतने व्रत-उपवास करेंगे, इतने जप-तप करेंगे तब भगवान मिलेंगे... इतने होम-हवन करेंगे तब भगवान मिलेंगे... हम मर जायेंगे तब भगवान के धाम में जायेंगे...' उनकी यह धारणा ही उन्हें भगवान से दूर कर देती है।

वास्तव में भगवान मिला-मिलाया ही है किन्तु मन-बुद्धि परिवर्तनशील माया में लगे हैं इसलिये मिला-मिलाया भगवान भी पराया लगता है और पराई नश्वर चीजें अपनी लगती हैं। जिसे आप 'मैं' बोलते हैं वह नश्वर शरीर भी आपका नहीं है, माया का विलासमात्र है। जिसकी सत्ता से आप 'मैं-मैं' बोलते हैं उसकी गहराई में जाओ तो अपने स्वरूप का निश्चय हो जायेगा। वास्तव में निश्चय 'स्व' में होता है और 'स्व' शाश्वत में रहता है। दर्शनशास्त्र की यह सूक्ष्म बात है। इसको सुननेमात्र से हजारों कपिला गौदान करने का फल मिलता है।

मन ! तू ज्योतिस्वरूप, अपना मूल पिछान।

यदि मन अपने मूल को पहचान ले तो अपने-आप भगवान में लग जायेगा। बुद्धि अपने मूल को पहचानने लगे तो अपने-आप भगवान में लग जायेगी। यह 'मैं-मैं' जिस चैतन्य से उत्पन्न होता है उसका ज्ञान हो जाये तो सभी दुःखों का सदा के लिये अंत हो जाये। लेकिन होता क्या है कि, यह 'मैं' मन-इन्द्रियों से जुड़कर नश्वर चीजों को 'मेरा' मानने लगता है। ऐसे 'मेरा-मेरा' करते-करते कई बदल जाते हैं लेकिन 'मैं' वही-का-वही रहता है। जिस 'मैं' से मन-बुद्धि उत्पन्न होते हैं, उसी 'मैं' में मन-बुद्धि को लगा दें तो शाश्वत के द्वार खुल जायें...

उस वास्तविक 'मैं' में मन-बुद्धि को लगाने का अभ्यास करना चाहिए, लेकिन यह अभ्यास से नहीं होता।

फिर बेटे की अंतिम क्रिया की, स्नानादि किया एवं पिता को खाना बनाकर खिलाया। पिता तो संत थे लेकिन वे लोग उनको नहीं जानते थे। पड़ोसी भी उन्हें अपना मित्र मानते थे। किसीने पूछ लिया :

''भाई ! आप बातें तो बड़ी-बड़ी करते हैं कि 'शरीर नाशवान् है, आत्मा अमर है।' हमको तो उपदेश देते हैं और आपके पोते का देहांत हो गया तो आप इतना रोये कि आपके बहू-बेटे भी आपको चुप कराने लगे।''

संत : ''अभी छोड़ो। बहू की सहेलियाँ और बेटे के मित्र सुन लेंगे। बाद में बतायेंगे।''

फिर समय पाकर सब बगीचे में मिले तब संत ने कहा : ''मैं उस दिन समझकर रोया था। बेटे का इकलौता बेटा मर गया था। माँ-बाप दोनों रो रहे थे। यदि मैं उनको चुप कराने जाता तो वे और रोते कि 'आपको क्या है ? हमारा इकलौता बेटा मर गया, हमारे तो मानों, प्राण ही चले गये हैं...' ऐसा करके वे ज्यादा रोते। मैंने सोचा, उनको चुप कराने के लिये रोने में अपने को घाटा भी क्या है ? मैं समझकर रो रहा था तो दुःख नहीं हो रहा था। वे मोह से रो-रोकर अपना बुरा हाल कर लेते।''

रंगमंच पर कोई भिखारी की भूमिका अदा करता है कि : 'दे दो, कोई पाँच-दस पैसे दे दोऽऽऽ... तुम्हारे बाल-बच्चे सुखी रहेंगे...' वही व्यक्ति रंगमंच से उतरने के बाद आराम से चाय-नाश्ता करता है और १०० रूपयों की नोट जेब में डालकर मजे से रह लेता है। लेकिन उसका अभिनय ऐसा होता है कि दर्शक को लगता है कि 'हम सब उसे १-१ रूपया दे देवें।'

जो समझकर रोता है उसे दुःख के समय भी कोई दुःख नहीं होता।

अष्टावक्रजी महाराज राजा जनक से कहते हैं :

संतुष्टोऽपि न सन्तुष्टः खिन्नोऽपि न च खिद्यते।
तस्याश्चर्यदशां तां तां तादृशा एव जानते ॥

'धीर पुरुष संतुष्ट होकर भी संतुष्ट नहीं होता है और दुःखी होकर भी दुःखी नहीं होता है। उसकी इस आश्चर्यमय दशा को वैसे ज्ञानी ही जानते हैं।'

(अष्टावक्र गीता : १८.५६)

ऐसे महापुरुष शरीर के जीवन को अपना जीवन नहीं मानते और शरीर की मौत को अपनी मौत नहीं मानते क्योंकि उन्होंने अपने मन-बुद्धि को चैतन्यस्वरूप परमात्मा में लगा दिया है। उन्होंने समझ लिया है कि : 'जिसकी मौत होती है वह मैं नहीं हूँ और जो मैं हूँ उसकी कभी मौत नहीं होती।'

कुछ लोग मानते हैं कि : 'इतने व्रत-उपवास करेंगे, इतने जप-तप करेंगे तब भगवान मिलेंगे... इतने होम-हवन करेंगे तब भगवान मिलेंगे... हम मर जायेंगे तब भगवान के धाम में जायेंगे...' उनकी यह धारणा ही उन्हें भगवान से दूर कर देती है।

वास्तव में भगवान मिला-मिलाया ही है किन्तु मन-बुद्धि परिवर्तनशील माया में लगे हैं इसलिये मिला-मिलाया भगवान भी पराया लगता है और पराई नश्वर चीजें अपनी लगती हैं। जिसे आप 'मैं' बोलते हैं वह नश्वर शरीर भी आपका नहीं है, माया का विलासमात्र है। जिसकी सत्ता से आप 'मैं-मैं' बोलते हैं उसकी गहराई में जाओ तो अपने स्वरूप का निश्चय हो जायेगा। वास्तव में निश्चय 'स्व' में होता है और 'स्व' शाश्वत में रहता है। दर्शनशास्त्र की यह सूक्ष्म बात है। इसको सुननेमात्र से हजारों कपिला गौदान करने का फल मिलता है।

मन ! तू ज्योतिस्वरूप, अपना मूल पिछान।

यदि मन अपने मूल को पहचान ले तो अपने-आप भगवान में लग जायेगा। बुद्धि अपने मूल को पहचानने लगे तो अपने-आप भगवान में लग जायेगी। यह 'मैं-मैं' जिस चैतन्य से उत्पन्न होता है उसका ज्ञान हो जाये तो सभी दुःखों का सदा के लिये अंत हो जाये। लेकिन होता क्या है कि, यह 'मैं' मन-इन्द्रियों से जुड़कर नश्वर चीजों को 'मेरा' मानने लगता है। ऐसे 'मेरा-मेरा' करते-करते कई बदल जाते हैं लेकिन 'मैं' वही-का-वही रहता है। जिस 'मैं' से मन-बुद्धि उत्पन्न होते हैं, उसी 'मैं' में मन-बुद्धि को लगा दें तो शाश्वत के द्वार खुल जायें...

उस वास्तविक 'मैं' में मन-बुद्धि को लगाने का अभ्यास करना चाहिए, लेकिन यह अभ्यास से नहीं होता।

''बापू ! अभ्यास करना चाहिए ऐसा आप कहते हैं और फिर ऐसा भी कहते हैं कि अभ्यास से नहीं होता है ?''

शरीर को 'मैं' मानने का जो उल्टा अभ्यास पड़ गया है उस उल्टे को सुलटा करने के लिये अभ्यास करना चाहिए। जैसे, रास्ता भूलकर आगे निकल जाते हैं तो वापस आना पड़ता है, ऐसे ही मन-बुद्धि जो नश्वर शरीर और संसार में लग गये हैं उन्हें ईश्वर में लगाना है। वैसे तो मन-बुद्धि ईश्वर में ही लगे हुए हैं।

ईश्वर से ही मन-बुद्धि स्फुरित होते हैं। जैसे तरंगें पानी से ही उठती हैं, ऐसे ही मन-बुद्धि चैतन्यस्वरूप परमात्मा से ही उठते हैं। ये जहाँ से उठते हैं उसीको सत्य मानकर उसमें लग जायें तो काम बन जाये... लेकिन उठकर बाहर भागते हैं।

जैसे, इकलौता लड़का अपने करोड़पति पिता से अलग होकर एक-दो कमरे को अपना माने, १००-२०० रूपये छुपाकर रखे और कहे कि : 'ये २०० रूपये मेरे हैं...' तो उसे क्या कहा जाये ? अरे ! अपने को पिता का माने तो उनकी करोड़ों की मिल्कियत उसीकी है। ऐसे ही मन-बुद्धि को ईश्वर में लगाया तो सारा ब्रह्माण्ड आपका है, परमात्मा भी आपका है, ब्रह्माजी की ब्राह्मी स्थिति भी आपकी है... आप ऐसे व्यापक ब्रह्म हो जाते हैं ! फिर सारी सृष्टियाँ आपके ही अंदर हैं, आप इतने महान् हो जाते हैं ! सारे राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, उद्योगपति जिस परमात्मा से हैं उस परमात्मा के साथ आपका ऐक्य हो जाता है।

फिर धनाढ्य और सुखी होने की इच्छा नहीं रहती, कुछ बनने की इच्छा और बिगड़ने की चिन्ता नहीं रहती, मौत का भय और जीने की इच्छा नहीं रहती, ऐसे निर्वासनिक पद में आपकी स्थिति हो जाती है।

फिर तो आपके मन-बुद्धि स्वाभाविक ही परमात्मा में लगे रहेंगे। आपके द्वारा स्वाभाविक ही लोगों का हित होने लगेगा लेकिन आपको करने का बोझ नहीं लगेगा। समाज की सच्ची सेवा या सच्ची उन्नति तो ज्ञानियों के द्वारा ही होती है। जिसे ज्ञान नहीं हुआ, आत्मतृप्ति नहीं मिली, स्वयं को जिसने ठीक से नहीं देखा वह औरों को क्या ठीक दिखायेगा ? सच्ची सेवा तो ज्ञानवान् महापुरुष ही करते हैं, बाकी की सब कल्पित सेवाएँ हैं।

लोगों को नश्वर चीजें दिला दीं, अपने नश्वर अहं को पोष दिया तो क्या हो गया ? क्या सब लोग दुःख से मुक्त हो गये ? हजारों लोग सेवा करते हैं, हजारों लोग सेवा लेते हैं लेकिन सेवा करनेवालों को कोई-न-कोई दुःख लगा रहता है और सेवा लेनेवाले भी दुःखी रहते हैं। सुखी तो केवल वे ही हैं जिन्होंने ज्ञानी महापुरुष की शरण ली है, जिन पर ज्ञानी महापुरुष की करुणा-कृपा है और जिन्होंने ज्ञानी महापुरुष की सेवा की है। ऐसे साधक फिर स्वयं दुःखभंजन हो जाते हैं।

अतः भगवान के वचनों को समझकर मन-बुद्धि को भगवान में लगाने का अभ्यास करना चाहिए। भगवद्प्राप्त महापुरुषों के सत्संग का श्रवण करें अथवा तो भगवान की चर्चा करें, इससे मन-बुद्धि भगवान में लगेंगे।

'मैं-मेरा' 'तू-तेरा' देखते हैं तो मन-बुद्धि परेशानी में लगते हैं। 'मैं-मेरा' 'तू-तेरा' दिखेगा तो सही, लेकिन जिस परमात्मा की सत्ता से दिखता है उस पर नजर डालें तो मन-बुद्धि परमात्मा में लगने लगेंगे। फिर तो...

हरदम खुशी... हर हाल खुशी...
जब आशिक मस्त फकीर हुआ,
तो क्या दिलगीरी ? बाबा !

गुरुकृपा पचाने की कला आ जाये तो मुक्त होना बड़ा आसान है। जो पूर्ण परमात्मा है उसमें अपने मन-बुद्धि को लगा दें एवं बाकी के कार्यों को यत्न करके पूरा करें। जो भी कार्य हो, सेवा हो, उसे तत्परता से करें। सेवाकार्य तत्परता से करेंगे तो मन-बुद्धि उसीमें स्थिर होंगे।

श्रीरामकृष्ण परमहंस कहा करते थे : **''जो अपने सेवाकार्य में तत्पर नहीं है, वह अपनी आत्मा की उन्नति कैसे कर सकता है ?''**

पलायनवादिता नहीं, तत्परता चाहिए। अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ न बढ़ायें, व्यक्तिगत

आदतें पूरी करने के पीछे न लगें। जो भी अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति आये तो **'यह भी गुजर जायेगा...'** ऐसा करके मन-बुद्धि को ईश्वर में लगायें । अन्यथा मन-बुद्धि अनुकूलता में लग जायेंगे तो थोड़ी-सी प्रतिकूलता भी मुसीबत पैदा कर देगी । मन-बुद्धि वाहवाही और यश-मान में लग जायेंगे तो मान थोड़ा कम मिलने पर या अपमान होने पर परेशानी हो जायेगी । मन-बुद्धि शरीर में लगेंगे तो मरते समय शरीर में आसक्ति रह जायेगी और यह आसक्ति प्रेतयोनि में भटकायेगी । मन-बुद्धि को पुण्य कार्य में, देवी-देवता के भजन में लगायेंगे तो पुण्य बढ़ने पर मनुष्यलोक में आयेंगे। धर्मविरुद्ध आचरण करने पर पाप बढ़ेंगे तो हल्की योनियों में जायेंगे। मन-बुद्धि ईश्वर में लगायेंगे तो ईश्वर से मिलकर ईश्वरमय, ब्रह्ममय हो जायेंगे... मर्जी आपकी है ।

इसीलिये भगवान कहते हैं :

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

'मुझमें मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा। इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।'

देर-सवेर मन-बुद्धि को परमात्मा में लगाना ही पड़ेगा तो फिर अभी से क्यों नहीं ?

*

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी । अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी ।

परमात्म-स्वरूप में विश्रान्ति

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

गंगाजी के तटप्रदेश में जम्बूद्वीप पर्वत के एक दीप्तिमान् व सुनहरे रंग के शिखर पर दीर्घतपा नाम के महर्षि रहते थे। वे महा तपस्वी और उदारबुद्धि महात्मा थे। वे अपनी सुशील धर्मपत्नी और चन्द्रमा के समान सुंदर दो बेटे पुण्यक और पावन के साथ गंगा तट पर निवास कर रहे थे। उन्होंने सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनकी पत्नी भी उनके धर्मकार्य में सहयोग देती थीं।

कुछ समय बीतने पर मुनि के दोनों पुत्रों में से पुण्यक नामक पुत्र ज्ञानवान् हो गये, परन्तु उनके दूसरे पुत्र पावन ज्ञान में अधूरे रह गये। वे निरा मूर्ख भी नहीं थे लेकिन उन्हें परमार्थ तत्त्व का यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था। वे बीच में ही झूल रहे थे।

इस तरह बहुत वर्ष बीत गये। दीर्घतपा ऋषि का शरीर जर्जरीभूत हो गया । वे शरीर की क्षणभंगुरता को जानते थे इसलिए उन्होंने चित्त की वृत्ति को शरीर से विरक्त करके विदेहमुक्त होना चाहा। जैसे सर्प केंचुली का त्याग करता है, वैसे ही दीर्घतपा मुनि ने अपने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया और वे संकल्प तथा राग से शून्य परम पदस्वरूप सच्चिदानंदघन ब्रह्मभाव को

उपलब्ध हो गये। मुनीश्वर की पत्नी ने अपने पति का प्राणरहित शरीर देखा तो उन्होंने पति की सिखायी हुई चिरकाल से अभ्यस्त यौगिक क्रिया द्वारा प्राणों को वश करके वैसे ही अपने शरीर को छोड़ दिया, जैसे भँवरा कमल को छोड़कर उड़ जाता है।

माता और पिता के विदेहमुक्त होने पर ज्येष्ठ पुत्र पुण्यक ही स्थिर चित्त हो उनके अन्त्येष्टि-कर्म में प्रवृत्त हुए। पावन तो शोक-संतप्त होकर वन में जहाँ-तहाँ विलाप करते हुए भटकने लगे।

माता-पिता का अन्त्येष्टि कर्म समाप्त करके पुण्यक शोकाकुल बंधु पावन के पास आये। उन्हें दुःखी देखकर पुण्यक ने कहा : ''हमारे माता-पिता ज्ञानवान् थे और वे अपने आत्मस्वरूप को प्राप्त हुए हैं। तुम उनका शोक क्यों करते हो ? तुम मोहवश शोकाकुल हो रहे हो। वे जिस पद को प्राप्त हुए हैं वह सबका अपना ही स्वरूप है। न वे तुम्हारे माता-पिता थे और न ही तुम उनके पुत्र हो। तुम्हारे कितने ही माता-पिता हो चुके हैं और उन माता-पिताओं के असंख्य पुत्र हो चुके हैं, केवल तुम्हीं उनके पुत्र नहीं हो। तुम इन माता-पिता के लिये दुःखी हो रहे हो तो अनंत जन्मों में तुम्हारे जितने माता-पिता हो चुके हैं उनके लिये शोक क्यों नहीं करते ? दशार्णव देश में तू काक और वानर हुआ। तुषार्ण देश में तू राजपुत्र हुआ और फिर वनकाक हुआ। बंग देश में तू हाथी हुआ। बिराज देश में तू गर्दभ हुआ। मालव देश में तू सर्प और वृक्ष हुआ और बंग देश में गिद्ध हुआ। मालव देश के पर्वत में पुष्पलता हुआ और मंदराचल पर्वत में गीदड़ हुआ। कोशल देश में ब्राह्मण हुआ। बंग देश में तीतर हुआ, तुषार देश में घोड़ा हुआ, एक नीच ग्राम में बछड़ा हुआ और वहाँ पंद्रह महीने रहा। एक वन में तड़ाग था, वहाँ कमलपुष्प में भ्रमर हुआ और जम्बूद्वीप में तू अनेक बार उत्पन्न हुआ है। तेरे और मेरे अनेक जन्मों के माता-पिता-भाई और मित्र हुए हैं। उनका शोक तू क्यों नहीं करता ? अगर तुम इन माता-पिता के लिए शोक करते हो तो उनके लिये भी दुःखी होना चाहिए।

हे भाई! तुम ज्ञानदृष्टि से विचार करके देखो। यह दृश्य जगत मायामात्र है। एक अनंत चिदाकाश आत्मसत्ता सर्वत्र है। उसमें वास्तव में न तुम्हारी कोई माता है, न कोई तुम्हारे पिता हैं, न बंधु हैं, न मित्र हैं। यह सब भ्रम से भासित हो रहा है। यह शरीर तो रक्त, मांस और हड्डियों का समूह है, अस्थियों का पिंजर है। इससे भिन्न 'मैं कौन हूँ ?' इस पर तुम स्वयं अपने चित्त में विचार करो।

अनंत जन्मों में हमारे अनेक माता-पिता, बंधु मित्रादि काल का शिकार हो चुके हैं, उनमें से हम किन-किन के लिये शोक करें ? संसार की तो ऐसी ही गति है। पावन! मन की इस प्रपंच-भावना को त्यागकर तुम उस गति को प्राप्त करो, जो आत्मज्ञानी पुरुषों को उपलब्ध होती है। तुम शांतचित्त होकर आत्मा का, अपने-आपका जो भाव-अभाव से मुक्त, जरा-मृत्यु से रहित है उसका स्मरण करो। मन में मूढ़ता न लाओ। हे उत्तम बुद्धिवाले पावन ! न तुम्हें दुःख है, न तुम्हारा जन्म हुआ है, न तुम्हारी कोई माता है, न तुम्हारे कोई पिता हैं। तुम केवल शुद्ध-बुद्ध आत्मा हो, दूसरा कुछ भी नहीं हो। जो इच्छाओं से रहित हैं, मननशील हैं तथा जिन्होंने अपने हृदयकमल में आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कर लिया है, उन आत्मा के द्वारा अपने भीतर के संपूर्ण संसार-भ्रम को मिटाकर अवशिष्ट हुए उस भावस्वरूप आत्मा से ही संतोष प्राप्त करो। माता-पिता ने तो आत्मा के सम्यक् ज्ञान से अपना कल्याण कर लिया है, अब तुम अपने नित्य, शुद्ध-बुद्ध, शांत, परमात्मस्वरूप में स्थित हो।''

इस प्रकार पुण्यक ने अनेक रीति से पावन को समझाया तब उन्हें उत्कृष्ट बोध प्राप्त हुआ। उन्होंने परमात्म-तत्त्व का अनुभव कर लिया, ज्ञान-विज्ञान में पारंगत तथा सिद्ध स्थिति को वे प्राप्त हुए। वे दोनों भाई इच्छानुसार वन में विचरने लगे। समय आने पर वे दोनों देहरहित हो परम निर्वाण पद को प्राप्त हुए।

वशिष्ठजी कहते हैं : ''हे रामजी! पूर्व जन्मों में जो असंख्य देह धारण कर चुके हैं उन प्राणियों के माता-पिता, बंधु-बांधव आदि का समुदाय अनन्त है। उनमें से कौन किनका ग्रहण करे और किनका त्याग करे ? एकमात्र विवेकरूपी सखा और पवित्र एवं तीक्ष्ण बुद्धिरूपिणी सखी को साथ ले संसार में शास्त्रविहित आचरण करनेवाला पुरुष संकट आने पर भी मोहग्रस्त नहीं होता। वैराग्य एवं शास्त्रों के अभ्यास से तथा क्षमा, दया, शांति, सत्यता और संतोष आदि गुणों से आपत्ति का निवारण करने के लिए मनुष्य स्वयं ही यत्नपूर्वक अपने मन को उन्नत बनाये।

जो परम पद की प्राप्तिरूप फल पूर्वोक्त महत्तायुक्त गुणों से उत्कर्ष को प्राप्त हुए मन के द्वारा उपलब्ध हो सकता है, वह तीनों लोकों के ऐश्वर्य तथा रत्नों से भरे हुए कोश की प्राप्ति से भी नहीं हो सकता।

विशुद्ध अमृतरस से मन के पूर्ण होने पर सारी वसुधा आनंद की सुधा-धारा से आप्लावित हो जाती है। वैराग्य से ही मन पूर्णता को प्राप्त विज्ञानानन्दघन रस से परिपूर्ण होता है। आशा, इच्छा, कामना आदि के वशीभूत हुआ मन उपर्युक्त पूर्णता को नहीं प्राप्त होता। जिनके चित्त में किसी लौकिक वस्तु की स्पृहा नहीं है, उन लोगों के लिये तीनों लोकों का ऐश्वर्य कमलगट्टे के समान अत्यंत तुच्छ है।

श्रीराम ! चित्त के नष्ट हो जाने पर अविचल धैर्य से युक्त पुरुष उस परम पद को प्राप्त कर लेता है, जहाँ फिर नाश का भय नहीं है।''

(श्रीयोगवाशिष्ठ महा. उपशम प्रकरण.सर्ग : १९-२१)

संत-सान्निध्य की महिमा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है :

''हे रामजी ! संत और भक्त में दोष देखना अपना विनाश करना है। साधु में एक भी गुण है तो उसको अंगीकार कीजिये। उनके अवगुण न सोचिये, न खोजिये।''

अगर अवगुण देखना चाहोगे तो श्रीराम में भी दिख जायेंगे, श्रीकृष्ण में भी दिख जायेंगे, बुद्ध, नानक और कबीर आदि में भी दिख जायेंगे। जैसे, बुद्ध एक नर्तकी के हाथ का बनाया हुआ भोजन करते थे... श्रीकृष्ण गोपियों के साथ नाचते थे... श्रीरामजी ने सीता माता का त्याग कर दिया था... लेकिन यह सब उनका बाह्य आचरण है। अगर इसे बाह्य दृष्टि से देखकर चलोगे तो आप गड्ढे में गिर जाओगे किन्तु यदि अंतर्दृष्टि से उनके इन कार्यों को देखोगे तो आप तर जाओगे। बाह्य दृष्टि से ज्ञानी प्रारब्धवश व्यवहार में कुछ लेन-देन करते भले ही दिखें, परन्तु अन्तःकरण से वे कुछ नहीं करते वरन् सदा अपने-आपमें ही तृप्त रहते हैं।

अगर ऐसे महापुरुषों को भी अवगुणी की नजर से देखोगे तो अवगुण खूब दिख जायेंगे और तुम्हारा चित्त भी अवगुणों का भण्डार हो जायेगा।

एक बार दुर्योधन के गुरुदेव द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा : ''जाओ, देखकर आओ कि नगर में कितने सज्जन लोग हैं ?''

दुर्योधन गया, दिन भर घूमा और शाम को लौटकर अपने गुरुदेव से उसने कहा :

''नगर में सारे लोग दुर्जन ही हैं।''

फिर गुरुदेव ने युधिष्ठिर को उसी नगर में भेजते हुए कहा : ''जाओ, तुम देखकर आओ कि नगर में कितने दुर्जन लोग हैं ?''

युधिष्ठिर गये, दिन भर घूमकर शाम को आये एवं बोले :

''नगर में कोई दुर्जन नहीं है। सब सज्जन ही सज्जन हैं।''

युधिष्ठिर तो दुर्योधन को भी दुर्योधन नहीं अपितु 'सुयोधन' बोलते थे एवं दुःशासन को भी 'सुशासन' कहकर बुलाते थे। उनके चित्त में शांति रहती थी, आनंद रहता था।

आप भी यदि एक-दूसरे को दोषमय देखोगे तो आपकी शक्तियों का ह्रास होगा। उनके वे दोष आपमें भी उत्पन्न होने लगेंगे। इसके विपरीत यदि अपने बेटे-बेटी, पुत्र-परिवार, मित्र आदि में भी दोष देखने के बजाय गुण देखोगे तो उनके भी गुण बढ़ेंगे और आपमें भी उन गुणों का विकास होने लगेगा।

अतः दुर्योधन की नाईं किसी व्यक्ति में दुर्गुण मत देखो अपितु युधिष्ठिर की नाईं सद्गुण देखो। हम तो कहते हैं कि युधिष्ठिर से भी आगे श्रीकृष्ण की नाईं सबमें अपने को देखो और अपने में सबको देखो। भोलेबाबा कहते हैं :

सब प्राणियों में आपको, सब प्राणियों को आपमें।
जो प्राज्ञ मुनि है जानता, कैसे फँसे फिर पाप में ?
अक्षय सुधा के पान में, जिस संत का मन लीन हो।
क्यों कामवश सो हो विकल, कैसे भला फिर दीन हो ?

ऐसे महापुरुषों को ही 'साधु' कहा गया है। मनुष्य को चाहिए कि वह यत्नपूर्वक साधु की संगत करे। साधु की संगत में अगर असाधु रहे तो वह भी साधु बन जाये लेकिन साधु अगर असाधु के प्रभाव में रहे तो वह भी असाधु हो जाये। ऐसे ही शिष्य अगर गुरु के कहने में चलता है तो एक दिन गुरु के अनुभव को वह अपना बना लेता है किन्तु गुरु यदि शिष्य के कहने में चलने लग जायें तो वे गुरु गुरु ही न रह जायें। इसीलिये असाधुओं को छोड़कर साधु का संग करना चाहिए। उनके साथ मिलकर सत्संग करना चाहिए। जो नित्य अपने-आपमें तृप्त रहते हैं, मस्त रहते हैं तथा वही मस्ती सबको लुटाते रहते हैं ऐसे साधुपुरुषों का संग तो स्वयं संत भी चाहते हैं।

जो परम संत हों, साधु हों अगर उनमें एक भी गुण देखने को मिल जाये तो उसे स्वीकार कर लेना तथा अज्ञानी के, असाधु के हजार गुण भी दिखें, फिर भी उसकी धन-दौलत, मिथ्या पद-प्रतिष्ठा की वासना में नहीं पड़ना। साधु की सहजता एवं सरलता दिख जाये तो उसे यत्नपूर्वक अंगीकार करना चाहिए।

यदि आपने किसीको अमुक समय, अमुक स्थान पर मिलने का वचन दिया हो और पास में ही किसी ज्ञानी, संतपुरुष का सत्संग चल रहा हो तो आप उस व्यक्ति से मिलने मत जाना किन्तु सत्संग में जरूर जाना क्योंकि उस व्यक्ति से तो फिर कभी भी मिल सकते हो किन्तु संत पुरुष के दर्शन तथा सत्संग-सान्निध्य का लाभ बार-बार नहीं मिलता। ऐसे संत पुरुष कभी-कभी ही कहीं-कहीं पर मिलते हैं अतः सब काम छोड़कर भी उनके श्रीचरणों में पहुँच जाना।

संसारी व्यक्ति दे-देकर भी क्या देगा ? संसारी तो आपको वासना पोसने की चीजें तथा वासना जगाने की बातें ही देगा, जिससे अभिमान-अहंकार पनपेगा जबकि ज्ञानवानों के संग से एवं उनके सत्संग में जाने से विवेक जगता है, वैराग्य उत्पन्न होता है, हृदय पवित्र एवं अहंकार गलित हो जाता है। उनके दर्शनमात्र से अमिट पुण्य की प्राप्ति होती है तथा मन को शांति मिलती है।

ऐसे ज्ञानवानों के लिए विरोधी, निंदक तथा कुप्रचारक कुछ-का-कुछ बोलते-लिखते रहते हैं किन्तु समझदार श्रद्धालु भक्त उनके इस जाल में नहीं फँसते, वरन् वे और भी अधिक दृढ़ता से अध्यात्म के मार्ग पर डट जाते हैं

क्योंकि वे जानते हैं :

संत न होते संसार में, तो जल मरता संसार...

...किन्तु अभागे कुप्रचारक संतों की निंदा करके अपने कीमती मानव जीवन को नरकगामी तो बना ही लेते हैं, साथ-ही-साथ अपने २१ कुलों को भी ले डूबते हैं जबकि भक्त तो भक्ति के मार्ग पर दिनोंदिन उन्नति करते हुए अपना जीवन सफल कर लेते हैं।

एक तो आज कल की पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण के युग में संत-भगवंत में श्रद्धा होना कठिन है और अगर थोड़ी-बहुत श्रद्धा होती भी है तो कुप्रचारकों की बातें पढ़-सुनकर वह टूट जाती है। कुंठित मन-बुद्धिवाले लोग अनर्गल बातों के चलते ईश्वरतुल्य संत के दर्शन व सत्संग-लाभ के लिए एक कदम भी नहीं चल पाते वरन् दूर ही भागते रहते हैं।

अगर भागना ही है तो जीवन को तबाह करनेवाले जहरीले तथा जानलेवा व्यसनों से दूर भागो। विषय-विकारों में उलझाकर जीवन के ओज-तेज को नष्ट करने तथा शक्तिहीन-बुद्धिहीन बनानेवाली बुराइयों एवं चलचित्रों से दूर भागो। उन विषय-विकारों का त्याग करो जो हमें अंधकार की खाई में ले जाते हैं। उस मोह-माया को त्यागो जो हमें संत के द्वार तक पहुँचने से रोकती हैं। लेकिन आज के अच्छे-भले भारतवासी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आकर अपनी सभ्यता व संस्कृति के आदर्शों एवं व्यवहारों को भूल गये हैं, संत-शरण तथा उनके दर्शन व सत्संग के लाभ को भूल गये हैं और दुनिया के मिथ्या व्यवहार की ओर भागे जा रहे हैं।

श्रीकृष्ण जैसे श्रीकृष्ण और श्रीराम जैसे श्रीराम भी जब अवतार लेकर आये तो उन्होंने भी श्रद्धा व नम्रतापूर्वक सद्गुरु एवं संत-महापुरुषों के श्रीचरणों में अपने मस्तक झुकाये, उनके आश्रम में रहकर सेवा-साधना की। परन्तु आज के मानव इन सब चीजों से दूर ही भागते फिर रहे हैं।

जो अति कामी हैं, विषयी-विलासी हैं, तुच्छ भोगों में आसक्त हैं वे दूसरे जन्म में कोई कीट-पतंग आदि नीची योनियों में, तो कोई शूकर-कूकर की योनि में पुण्य-पाप की तारतम्यता से कोई घोड़े-गधे आदि पशुओं की योनि में तो कोई वृक्ष आदि योनियों में जन्म लेकर बड़े कष्ट पाते हैं लेकिन जो संतों के श्रीचरणों में श्रद्धापूर्वक शीश झुकाते हैं, उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण कर सेवा-साधना करने लग जाते हैं, उनके वचनों को पचा लेते हैं वे देर-सबेर महान् परमेश्वरीय भक्ति, महान् परमात्मज्ञान पाकर मुक्त हो जाते हैं एवं भक्त परमात्मधाम को पा लेते हैं।

कबीरजी ने कहा है :

संत मिले यह सब मिटे, काल जाल जम चोट।
शीश नमावत ढही पड़े, सब पापन की पोट ॥

अतः प्रयत्नपूर्वक संत-महापुरुषों में एक भी दोष न देखते हुए, उनके गुणों को अंगीकार करते हुए मानव को अपने जीवन को सार्थक करने का यत्न अभी से शुरू कर देना चाहिए।

*

स्व-स्वरूप में विश्रान्ति पाना ही सच्ची बुद्धिमानी है। कई लोग ऐसे होते हैं जो सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होते रहते हैं। कई लोग ऐसे होते हैं जो सुख में तो सुखी और दुःख में भी सुखी रहते हैं लेकिन सुख और दुःख को खिलवाड़ समझ लेनेवाला मनुष्य बुद्धिमान् है। वह सबसे ऊँचा हो जाता है।

दुःख में दुःखी और सुख में सुखी हो जानेवाले आदमी की कीमत लोहे जैसी है। सुख में भी सुखी और दुःख में भी सुखी रहनेवाले की कीमत सोने जैसी है। सुख-दुःख में सम रहनेवाले की कीमत हीरे जैसी है लेकिन सुख-दुःख को स्वप्न जैसा समझनेवाला आदमी सम्राट जैसा है। जैसे, लोहे से सोने की कीमत ज्यादा है और सोने से हीरा की कीमत ज्यादा है लेकिन लोहा, सोना, हीरा इन सबसे बड़ा सम्राट है क्योंकि वह इन सबका स्वामी है। इसी प्रकार जो सुख-दुःख को स्वप्नमात्र समझकर अपने सहज स्वभाव में आनंदित रहता है, वह सम्राट तो क्या, सम्राटों का भी सम्राट है।

साँईं कँवररामजी

[गतांक से आगे]

संगीत की शिक्षा

श्री ताराचंदजी चाहते थे कि उनका बेटा हर क्षेत्र में प्रवीण हो। इस उद्देश्य से उन्होंने अपने दस वर्षीय सुपुत्र साँईं कँवररामजी को हयात पताफी गाँव के शुदाणी दरबार में संगीत शिक्षा के लिए भेज दिया। वहाँ वे भाई हासाराम के सान्निध्य में संगीत सीखते थे।

संगीत सीखने में उनसे कभी कोई भूल हो जाती तो भाई हासारामजी उन्हें बहुत डाँटते और मारते। साँईं कँवररामजी अपने गुरु की डाँट-मार चुपचाप सहन कर लेते। कभी उफ़ तक नहीं निकालते। बड़े स्नेह से उनकी सेवा करते रहे।

गोली लगने का श्राप

कुछ समय बाद श्री ताराचंदजी के मन में हुआ कि : 'मेरा कँवर तो साँईं सतरामदासजी के रुड़की दरबार की अमानत है। अब उनकी अमानत उनको सौंप दी जाये।' यह सोचकर वे पताफन के दरबार में पहुँचे और साँईं कँवररामजी को घर ले आये, फिर उनको रुड़की दरबार में सौंप दिया।

दरबार की मालकिन माता हासीबाई साँईं कँवररामजी को बहुत स्नेह करती थीं। अतः उनके चले जाने से माता हासीबाई को बहुत दुःख हुआ। एक दिन जुदाई के इस गम में व्याकुल माता हासीबाई पलंग पर लेटी हुई थीं। दरबार का एक सेवाधारी आया और उनको प्रणाम करके बोला : ''माताजी ! कँवरराम के जाने के बाद दरबार की वह रौनक ही चली गई है। सब लोग उदास रहते हैं।''

यह सुनते ही माता हासीबाई के मुँह से निकल गया कि : ''गोली लगे इस नाम को ! उसका नाम मेरे आगे मत लो।''

माता हासीबाई का दिया हुआ यह श्राप आगे चलकर सही साबित हुआ। जीवन के अंत में सिंध देश के ये संतशिरोमणि गोली के शिकार हुए।

संयम

कँवररामजी एक संयमी नवयुवक थे। अपनी जिन्दगी में उन्होंने कभी किसी स्त्री को बुरी नज़र से नहीं देखा। हर स्त्री को माता, बहन और पुत्री की दृष्टि से देखते थे।

एक दिन वे अपने चचेरे भाई हुकुमतमल की दुकान पर बैठे थे। भाई हुकुमतमल कहीं बाहर गये हुए थे। एक मुसलमान औरत गुड़ खरीदने दुकान पर आई। वह कँवररामजी की सुंदरता पर मोहित हो गई और उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने के लिए स्त्री-चरित्र करने लगी। उसने बहुत नाज़-नख़रे किये लेकिन कँवररामजी ने उसकी ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं।

गुरुभक्ति

अपने गुरु के प्रति साँईं कँवररामजी की अखंड भक्ति थी। वे तन-मन-धन से गुरु की सेवा करते। सद्गुरु के वचन को वे ईश्वर का वचन समझते। सद्गुरु की आज्ञा का पालन करते समय वे अपनी जान की परवाह नहीं करते।

एक बार वे स्नान करके अंगोछे से अपने पैर पोंछ रहे थे। अचानक उनके गुरु स्वामी सतरामदासजी की नज़र उन पर पड़ गई और उनके मुखारविंद से निकल गया : ''कँवर ! क्या बात है ? अपने पैरों को इतना रगड़ रहे हो ? अपनी सुंदरता पर किसी को आकर्षित करना चाहते हो क्या ?''

सद्गुरु के ये शब्द उनके चित्त के अंतस्तल तक पहुँच गये। उस दिन के बाद उन्होंने कभी अपने पैर नहीं पोंछे। नहाकर गीले पैर ही जूते में डाल देते थे।

साँईं कँवररामजी जब अपने घर जरवारन से रुड़की आते तो रसोईघर के लिए रास्ते में लकड़ियाँ काटते और उन्हें सिर पर उठाकर ले आते । एक दिन वे लकड़ियों का बोझ लेकर जैसे ही रसोईघर में आये तो वहाँ स्वामी सतरामदासजी खड़े मिले । माथे पर लकड़ियों का बोझ और उनकी गंदी टोपी देखकर उनका दिल पसीज गया । उन्होंने साँईं कँवररामजी से कहा : ''कँवर ! तुम अपनी टोपी का भी ख्याल नहीं रखते हो ?''

कँवररामजी ने तब बहुत सुन्दर उत्तर दिया :

''साँईं ! पहले आपकी सेवा, बाद में मेरी टोपी । इस टोपी के साथ यह मस्तक भी कुर्बान आपकी सेवा के लिए ।''

एक बार कँवररामजी बिना गुरुआज्ञा के कीर्तन के लिए कहीं चले गये । पता चलने पर स्वामी सतरामदासजी उनसे बहुत नाराज हो गये । इधर कँवररामजी गुरु से अपनी गलती की माफी के लिए बहुत गिड़गिड़ाये किन्तु उन्होंने अपना कठोर रुख बनाये रखा । रात को जब कीर्तन शुरू हुआ तो कँवररामजी की आवाज बिलकुल बंद ! गले को कितना ही सहलाया, साफ किया लेकिन आवाज निकले ही नहीं। वे एक शब्द तक गा नहीं सके ।

कँवररामजी बहुत दुःखी हो गये । वे एक कोने में बैठे-बैठे रोते रहे । शिष्य की आर्त पुकार सुनकर सतरामदासजी का दिल पिघल गया और उनकी गलती को माफ कर दिया । गले लगाकर कहा :

''बेटा ! बड़ों के होते हुए उनकी आज्ञा के बिना कोई कदम नहीं उठाना चाहिए ।''

ऐसा कहकर कँवररामजी को भजन गाने को कहा । कँवररामजी ने भी आज्ञा मानकर अभी सिर्फ 'हाँ' ही कहा तो उनकी आवाज खुल गयी । अब उनकी आवाज पहले से भी ज्यादा मधुर हो गयी ।

बाहर से गुरु कठोर और नाराज दिखते हैं लेकिन इसमें शिष्य का हित ही निहित होता है । साँईं कँवररामजी से गुरु ने कठोर व्यवहार करके उन्हें ऐसे दर्जे पर पहुँचाया जहाँ स्थित होकर फिर उनसे ऐसी कोई गलती नहीं हुई जो उनको पतन की ओर ले जाय ।

उसके बाद कँवररामजी ने बिना गुरु की आज्ञा के कभी कोई कदम नहीं उठाया । गुरु का शरीर न रहने के बाद भी गुरु के परिवारवालों से आज्ञा लेकर ही कोई भी कदम उठाते । विवाह के बाद भी वे पत्नी सहित गुरु-दरबार में सेवा करते थे । वे हमेशा अपने को 'गुरु का गुलाम' और अपनी पत्नी को 'गुलाम की पत्नी' कहकर संबोधित करते थे । वे कहा करते कि : 'गुरुद्वार का कुत्ता भी मेरे सिर का ताज है ।'

एक बार किसीने उनसे उनके सिर की माँग की। साँईं कँवररामजी ने उन्हें बहुत सुन्दर जवाब दिया कि : ''अबा (बाबा) ! कँवर के पास तो एक ही सिर है जो सद्गुरु के द्वार पर बिक चुका है । दूसरा सिर होता तो आपको अवश्य दे देता । रावण की तरह दस मस्तक होते तो आपको एक जरूर मिल जाता ।''

उनके जीवन में कदम-कदम पर गुरुभक्ति देखने को मिलती है । धन्य है कँवररामजी आपकी गुरुभक्ति ! ऐसे गुरुभक्तों की यशोगाथा ही तो अमर होती है । [क्रमशः]

संसार के भोग में दुःख

वे अभागे हैं जिनको संसार के मजे भोगने की इच्छा है और संसार के मजे भोगने में जो भी लगे हैं उन बेचारों को दुःख-ही-दुःख उठाना पड़ता है । लेकिन भगवद्शांति, भगवद्रस पाने की तरफ जो चलते हैं आरंभ में वे अल्प वस्तुओं के साथ सीधा-सादा जीवन जीते हुए दिखते हैं लेकिन अंत में वे ही सच्चा सुख, सच्ची शांति पाते हैं और सत्यस्वरूप भगवान में मिल जाते हैं ।

संसार के सुख दिखते सुख हैं लेकिन भरे होते हैं दुःख से । ईश्वर का रास्ता लगता है आरंभ में दुःखद किन्तु परिणाम में अत्यंत सुखद होता है, अद्भुत आनंद से पूर्ण होता है ।

- प. पू. संत श्री आसारामजी बापू

* संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से *

गुणनिधि : चोर से बने कुबेर !

[महाशिवरात्रि : २१ फरवरी २००१]

'यजुर्वेद' में आता है :

(ॐ) नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

'कल्याण एवं सुख के मूलस्रोत भगवान शिव को नमस्कार है ! कल्याण तथा सुख के विस्तार करनेवाले भगवान शिव को नमस्कार है !! मंगलस्वरूप और मंगलमयता की सीमा भगवान शिव को नमस्कार है !!!' (यजुर्वेद : १६.५१)

फाल्गुन (गुजरात-महाराष्ट्र में माघ) कृष्ण चतुर्दशी को महाशिवरात्रि के रूप में मनाया जाता है। महाशिवरात्रि अर्थात् जागरण-साधना-भजन करने की रात्रि। 'शिव' से तात्पर्य है 'कल्याण' अर्थात् यह रात्रि बड़ी कल्याणकारी रात्रि है। इस रात्रि में किया जानेवाला जागरण, व्रत-उपवास, साधन-भजन, जप-ध्यान अत्यंत फलदायी माना जाता है।

शिवरात्रि की महिमा का वर्णन करते हुए स्वयं भगवान शिव कहते हैं :

''शिवरात्रि का व्रत सबसे अधिक बलवान् है। इसलिये भोग और मोक्षरूपी फल की इच्छा रखनेवाले लोगों को मुख्यतः इसी व्रत का पालन करना चाहिए। इस व्रत की तुलना में दूसरा कोई व्रत मनुष्यों के लिये उतना हितकारक नहीं है। यह व्रत सबके लिये धर्म का उत्तम साधन है। निष्काम अथवा सकाम भाव रखनेवाले सभी मनुष्यों, वर्णों, आश्रमों, स्त्रियों, बालकों, दासों, दासियों तथा देवता आदि सभी देहधारियों के लिये यह श्रेष्ठ व्रत हितकारक बताया गया है।''

(शिव पुराण कोटिरुद्र संहिता : अध्याय ३७)

भगवान शिव तो हैं ही औढरदानी। जरा-सा में संतुष्ट होनेवाले भोलेबाबा जो ठहरे ! तभी तो शिवालय में नैवेद्य चुराने के लिये आये हुए गुणनिधि ने अपने कपड़े को जलाकर प्रकाश किया तो उसके इस कार्य को उसका दीपदान मानकर भगवान शिव ने उसे अलकापुरी का स्वामी बना दिया।

'शिवपुराण' की 'रुद्रसंहिता' में आता है :

काम्पिल्य नगर में यज्ञदत्त नामक एक बड़े प्रसिद्ध सदाचारी ब्राह्मण रहते थे। उनका पुत्र गुणनिधि कुसंग में पड़कर बड़ा ही दुराचारी और जुआरी हो गया तो उन्होंने उसे घर से निकाल दिया। नाम तो था उसका गुणनिधि लेकिन था अवगुणों की खान।

भटकते-भटकते, भूख-प्यास सहते-सहते वह एक दिन किसी शिवालय में पहुँचा। नैवेद्य चुराने की इच्छा से वह अंदर गया एवं वहाँ अंधेरा होने के कारण उसने अपने वस्त्र जलाकर उजाला किया। मानों उसके द्वारा भगवान शिव के लिये दीपदान किया गया। तत्पश्चात् वह चोरी में पकड़ा गया और उसे प्राणदंड मिला।

अपने कुकर्मों के कारण वह यमदूतों द्वारा बाँधा गया लेकिन इतने में ही भगवान शंकर के पार्षद वहाँ आ पहुँचे एवं बोले : ''भले यह शिवमंदिर में चोरी की नीयत से ही आया था लेकिन तुम इसे नहीं ले जा सकते। यह भगवान शिव के लोक में ही जायेगा।'' यह कहकर शिवजी के पार्षदों ने उसे यमदूतों के बंधन से छुड़ा लिया और शिवलोक ले गये।

कुछ काल तक शिवलोक के सारे दिव्य भोगों का सेवन करने के पश्चात् गुणनिधि ने कलिंग देश के राजा अरिंदम के पुत्र के रूप में जन्म लिया। वहाँ उसका नाम रखा गया- दम। बाल्यकाल से ही वह शिवजी की सेवा में लगा रहता था।

अपने पिता के परलोकगमन के पश्चात् जब

वह कलिंगनरेश बना तो बड़े उत्साह एवं प्रसन्नता से सब ओर शिवधर्म का प्रचार करने लगा। समस्त शिवालयों में दीपदान के अतिरिक्त वह दूसरे किसी धर्म को नहीं जानता था। उसने अपने राज्य के समस्त ग्रामाध्यक्षों को बुलाकर यह आज्ञा दे दी कि :

''शिवमंदिर में दीपदान करना सबके लिये अनिवार्य होगा। जिस-जिस ग्रामाध्यक्ष के गाँव के पास जितने शिवालय हों, वहाँ-वहाँ बिना कोई विचार किये दीप सदा जलाया जाना चाहिए।''

आजीवन इसी धर्म का पालन करने के कारण राजा दम ने बहुत बड़ी धर्मसंपत्ति (पुण्य) का संचय कर लिया। समय पाकर वह राजा दम भी काल का ग्रास बना। उसने शिवालयों में आजीवन दीपदान करवाया था अतः उसी पुण्य के प्रभाव से वह अलकापुरी का स्वामी कुबेर हुआ।

कहाँ तो वह दुराचारी-जुआरी गुणनिधि जो चोरी करने के लिये शिवमंदिर गया, स्वार्थवश अपने कपड़े को दीपक की बत्ती बनाकर उसके प्रकाश से शिवलिंग के ऊपर का अंधेरा दूर कर दिया और प्रभुनाम एवं 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का जाप करवाया। उस सत्कर्म के फलस्वरूप वह कलिंग देश का राजा हुआ। कलिंग नरेश होकर भी शिवालयों में उसने दीप जलवाये तो दिक्पाल कुबेर का पद प्राप्त किया। फिर तपस्या के द्वारा कुबेर ने शिवजी की मित्रता भी प्राप्त कर ली।

दीपदान एवं प्रभुनाम जप से मिलनेवाली शिवभक्ति के प्रभाव को जानकर, गुणनिधि में से बने दिक्पाल कुबेर ने तपस्या का निश्चय किया एवं वे काशिकापुरी गये। वहाँ शिवलिंग की प्रतिष्ठा करके वे वर्षों तक उग्र तपस्या करते रहे। उनके शरीर में केवल अस्थि-चर्म मात्र शेष रह गया। उनकी तपस्या से संतुष्ट होकर भगवान शिव माता पार्वती के साथ प्रगट हुए।

पार्वतीपति ने कहा : ''अलकापते ! हम तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हैं, वर माँगो।''

उन्होंने आँखें खोलीं तो प्रथम उनकी नजर माँ पार्वती पर पड़ी। फिर तो वे बार-बार कुदृष्टि से उनकी ओर देखने लगे। इससे उनकी बाँयीं आँख फूट गयी।

देवी पार्वती ने कहा : ''यह आपका भक्त है लेकिन मेरी ओर कुदृष्टि से देख रहा है। आप मेरी तपस्या के तेज को प्रकट कीजिये।''

पार्वतीजी को कुपित देखकर शिवजी ने कहा :

''उमा ! यह तुम्हारा पुत्र है। यह तुम्हें कुदृष्टि से नहीं देखता बल्कि इसलिए बार-बार देख रहा है कि तुम्हारा ऐसा कौन-सा पुण्य है कि तुम इतनी महान् पदवी पर हो ? यह मेरा बेटा है तो तुम्हारा भी तो बेटा है।''

शिवजी ने कुबेर से कहा :

''वत्स ! मैं तुम्हारी तपस्या से संतुष्ट होकर तुम्हें वर देता हूँ। तुम निधियों के स्वामी हो जाओ। सुव्रत ! यक्षों, किन्नरों और राजाओं के भी राजा होकर पुण्यजनों के पालक और सबके लिये धन के दाता बन जाओ। मेरे साथ तुम्हारी मैत्री सदा बनी रहेगी और मैं नित्य तुम्हारे निकट निवास करूँगा। मित्र ! तुम्हारी प्रीति बढ़ाने के लिये मैं अलकापुरी के पास ही रहूँगा। आओ, इन उमा देवी के चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करो, क्योंकि ये तुम्हारी माता हैं।''

पार्वतीजी से शिवजी ने फिर कहा : ''देवेश्वरी ! इस पर कृपा करो।''

भगवान शंकर का यह कथन सुन पार्वतीजी ने प्रसन्न होकर कहा :

''वत्स ! भगवान शिव में तुम्हारी सदा निर्मल भक्ति बनी रहे। तुम्हारी बाँयीं आँख तो फूट ही गयी, अतः एक ही पिंगलनेत्र से युक्त रहो। महादेवजी ने जो वर दिये हैं, वे सब तुम्हें उसी रूप में सुलभ हों। बेटा ! मेरे रूप के प्रति ईर्ष्या करने के कारण तुम 'कुबेर' नाम से प्रसिद्ध होगे।''

इस प्रकार कुबेर ने भगवान शंकरजी की मैत्री प्राप्त की और अलकापुरी के पास जो कैलास पर्वत है, वह भगवान शंकर का निवास हो गया।

अभी तक आपकी सृष्टि के देव 'कुबेर भंडारी' खजानची हैं। कहाँ तो भूखामरी के कारण नैवेद्य चुराने वाला वह ब्राह्मण और कहाँ शिवभक्ति

करते देवताओं के वित्त मंत्री की पदवी प्राप्त की !

कैसे आशुतोष हैं भगवान शिव ! भगवान शिव के लिये किया हुआ थोड़ा-सा पूजन या आराधना समयानुसार महान् फल देती है । ऐसा जानकर उत्तम सुख की इच्छा रखनेवाले लोगों को शिव का भजन अवश्य करना चाहिए। इस 'बं-बं' बीजमंत्र का सवा लाख जाप शिवरात्रि को किया जाय तो जोड़ों के दर्द एवं वायु संबंधी रोगों में लाभ होता है और भगवान शिव की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

*

श्री रामकृष्ण परमहंस की करुणा-कृपा

[श्री रामकृष्ण परमहंस जयंती : २५ फरवरी २००१]

अपने हृदय से यह सब बातें निकाल दें कि : 'हम जितात्मा नहीं बन सकते... हम पापी हैं... हम बीड़ी-सिगरेट पीते हैं, शराब पीते हैं... हम गृहस्थी हैं... क्या करें ?'

अपने में दोषों का आरोपण करके अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मत चलाइए। दोष अपने में मानेंगे तो दोष बलवान् हो जायेंगे और आप दुर्बल हो जायेंगे। फिर आप थक-हार एवं निराश होकर बैठ जायेंगे।

वास्तव में, महादोषी व्यक्ति भी उस जितात्मा एवं परमात्मा का अंश है, अकाल पुरुष का सनातन सपूत है। 'दोष हैं तो मन, बुद्धि, इन्द्रियों एवं प्रकृति में हैं और ये सब बदलनेवाले हैं । मुझमें दोष नहीं हैं।' बदलनेवाले को बदलनेवाला जान लें और उसके साथ तादात्म्य कर बैठने की जो गलती है उसे निकालने के लिये पक्का संकल्प करके कटिबद्ध हो जायें तो आप जितात्मा हो सकते हैं।

श्री रामकृष्ण परमहंस के पास एक शराबी आया करता था। उनको देखे बिना उसे चैन नहीं पड़ता था लेकिन शराब के बिना वह रह भी नहीं सकता था।

कुटुम्बियों ने देखा कि उसको संत के प्रति श्रद्धा-प्रीति हो गयी है । **आसक्ति वैसे तो महा दुर्जय है, उसे मिटाना कठिन है लेकिन वही आसक्ति यदि सच्चे संत के प्रति हो जाये तो वह संसारसागर से तारनेवाली हो जाती है।**

कुटुम्बियों ने श्री रामकृष्ण के श्रीचरणों में प्रार्थना की : ''बाबाजी ! गिरीश हमारे कुटुम्ब के बड़े हैं लेकिन वे शराब बहुत पीते हैं। सुबह होते ही सबसे पहले बस, बोतल खोलते हैं। वे आपके पास आते हैं। कृपया आप उन्हें जरा मना कीजिये कि वे शराब न पियें।''

श्री रामकृष्ण ने गिरीश को बुलाकर पूछा :

''क्या तुम शराब पीते हो ?''

गिरीश : ''जी महाराज ! आप बोलें तो मैं भोजन न करूँ, पानी न पीऊँ... आप जो बोलेंगे मैं वह सब कर सकता हूँ, केवल शराब मत छुड़वाइयेगा । महाराज ! उसके बिना मैं जी नहीं सकता।''

''ठीक है भाई ! तू भले शराब पी लेकिन एक काम कर।''

''महाराज! आप जो बोलेंगे वह सब करूँगा।''

''एक काम कर। जब भी शराब पीने की इच्छा हो तो पहले माँ काली को भोग लगाकर फिर तू पिया कर । मेरी इतनी बात तो तू मानेगा न ?''

''जी महाराज ! यह तो मैं कर लूँगा लेकिन पीने में कोई रोक नहीं है न ?''

''नहीं, पीने में कोई रोक-टोक नहीं है। केवल इतना ही काम करना कि माँ काली को भोग लगाकर पीना।''

गिरीश शराब की बोतल छुपाकर ले गया मंदिर में। मन-ही-मन बोला : 'माताजी ! आपको भोग लगाने के लिये शराब लाया हूँ।' ऐसा कहकर वह ज्यों ही बोतल निकालने गया, त्यों ही कोई दर्शनार्थी आ गया। चुपचाप बोतल अंदर रख दी। थोड़ी देर बाद मंदिर खाली देखकर पुनः बोतल निकालने को गया तो फिर कोई आ गया । ऐसा करते-करते काफी समय बीत गया। सोचा : 'बाद में आयेंगे।' बाद में आया तो फिर वही हाल। ऐसा करते-करते तीन दिन हो गये । गया रामकृष्ण परमहंस के पास और बोला :

''महाराज ! आपने यह क्या जादू कर दिया है ? तीन दिन से शराब नहीं पी सका।''

श्री रामकृष्ण : ''तीन दिन से नहीं पी ?''

''नहीं महाराज ! माताजी को भोग लगता ही नहीं तो मैं कैसे पीता ? यह आपने क्या कर दिया ?''

''भैया ! तीन दिन तक तुम बिना शराब के रह गये न ?''

''जी महाराज !''

''जब तुम तीन दिन तक बिना शराब के रह गये तो ३० दिन तक भी रह सकते हो, ३० महीने तक भी रह सकते हो और ३० साल तक भी रह सकते हो । हिम्मत करो और भगवन्नाम का जप करो ।''

श्री रामकृष्ण परमहंस ने उसको हिम्मत दे दी... उसकी शराब सदा के लिये छूट गयी । गिरीश घोष शराबी में से अनन्य भक्त हो गये श्रीरामकृष्ण परमहंस के ।

नज़रों से वे निहाल हो जाते हैं ।
जो संतों की निगाहों में आ जाते हैं ॥

आपका दृढ़ संकल्प एवं महापुरुषों की करुणा आपको अनेक दोषों से बचाकर निर्दोष नारायण तत्त्व की ओर अग्रसर करने में सहायक होते हैं ।

*

अगर है शौक मिलने का तो कर ख़िदमत फकीरों की

[संत श्री रैदासजी महाराज जयंती : ८ फरवरी २००१]

काशीनरेश अपने मंत्री से कहते हैं :

''बाहर से तो मैं बड़ा सुखी हूँ क्योंकि मेरे पास यौवन, आरोग्यता और संपत्ति है, लेकिन भीतर से दुःखी भी बहुत हूँ क्योंकि हृदय में शांति नहीं है । अभी मैंने परम शांति नहीं पाई है, अपनी अंतरात्मा के सुख का स्वाद नहीं पाया है ।''

काशीनरेश का मंत्री बुद्धिमान् था । उसने कहा : ''अगर परम शांति चाहिए तो जिन्होंने परम शांति पाई है, उनकी संगति में जाना पड़ेगा । जिन्होंने परम शांति पायी है ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष की निगाहें आप पर पड़ें, उनके हाथ का प्रसाद मिल जाये, उनकी करुणा-कृपा से हृदय की ज्योति जग जाये तभी शांति मिल सकती है, राजन् !''

काशीनरेश : ''मैं कथा तो रोज सुनता हूँ ।''

मंत्री : ''राजन् ! कथा तो आप पंडितों से सुनते हैं, कथाकारों से सुनते हैं । किन्हीं आत्मारामी संत का सत्संग सुनिये तो शांति मिलेगी । यदि ऐसे महापुरुष के बारे में आप मुझसे पूछें तो इस वक्त काशी में ब्राह्मण, पंडित, साधु तो बहुत हैं लेकिन आत्मपद को पाये हुए जिन महापुरुष को मैं जानता हूँ वे हैं संत श्री रैदासजी महाराज ।''

काशीनरेश : ''जूते सीनेवाले रैदास ! एक उच्च कोटि के संत !!''

मंत्री : ''हाँ, राजन् ! उनका व्यवसाय भले मोची का है लेकिन वे परमात्म-पद को पाये हुए महापुरुष हैं । यदि वे आप पर कृपा कर दें तो आपको हृदय की शांति मिल सकती है ।''

काशीनरेश : ''मैं उन रैदासजी के पास कैसे जा सकता हूँ ? मैं काशी का राजा और वे जूते सीनेवाले एक मोची...''

मंत्री : ''राजन् ! उन महापुरुष का व्यवसाय न देखिये । मैं उनके दर्शन करके आया हूँ, उनके श्रीचरणों में बैठकर आया हूँ । आप भी एक बार अवश्य उनके दर्शन करें ।''

मंत्री की बात सुनकर राजा को थोड़ा भरोसा हुआ किन्तु अभी-भी मन में थोड़ी खटक थी कि : 'राजा होकर एक मोची के पास जाना !' उन्होंने मंत्री से कहा : ''मैं उन रैदासजी महाराज के पास कैसे जाऊँ ? लोग कहेंगे कि राजा होकर मोची के पास गये थे...''

उस जमाने में नात-जात का बड़ा बोलबाला था ।

मंत्री : ''राजन् ! फिर भी आपको उन महापुरुष के पास अवश्य जाना चाहिए । जिन मीराबाई के श्रीचरणों में भारत के बादशाह अकबर ने सिजदा करके अपना भाग्य बनाया, उन मीराबाई ने भी रैदासजी महाराज का मार्गदर्शन पाया है । रैदासजी के कृपा-प्रसाद को विकसित करके मीराबाई ने मेवाड़ को पावन कर दिया ।''

काशीनरेश : ''ठीक है... मैं भी मौका देखकर उनके पास जाऊँगा लेकिन ऐसे ढंग से जाऊँगा कि किसीको पता न चले ।''

अवसर पाकर राजा सेठ के वेश में रैदासजी

के पास पहुँचे।

उस वक्त रैदासजी महाराज जूते सी रहे थे। जूते सीने के लिए चमड़े को भिगोना पड़ता है। जिस लकड़ी के बर्तन में पानी रखा जाता है उसे कठौती बोलते हैं। कठौती में चमड़ा भिगोने से पानी रंगीन हो जाता है। रैदासजी महाराज अपने काम में लगे हुए थे। राजा ने कहा : ''महाराज ! मैं काशीनरेश हूँ। आपके यहाँ वेश बदलकर आया हूँ। मुझे पता चला है कि आप कृपा करते हैं। मुझे भी शांति का प्रसाद दीजिये।''

संत रैदासजी ने सोचा कि : 'राजा बनकर आया है, वह भी ईमानदारी से नहीं। बेईमानी से सेठ जैसा कोट पहनकर आया है। इसका अहं भी तो थोड़ा पिघलाना चाहिए।' अगर इसमें योग्यता है, अधिकारिता है और थोड़ा मिटेगा तो कुछ पा लेगा।' रैदासजी ने युक्ति की। उन्होंने कठौती में से आधी कटोरी पानी राजा को दिया एवं कहा : ''यह पानी पी लो। इससे शांति मिल जायेगी।''

राजा अहं लेकर आया है लेकिन कैसे होते हैं वे करुणामय संत ! कठौती के पानी के रूप में कृपा बरसाने को तैयार हो जाते हैं कि 'अगर थोड़ा अहं पिघलेगा तो शांति पा लेगा।' लेकिन राजा तो राजा था ! एक तो राजा... फिर मुश्किल से वेश बदलकर आया... ऊपर से प्रसाद में चमड़े का पानी ! राजा ने सोचा : 'अररर... नहीं पीते हैं तो देनेवाले का अपमान होता है और पीते हैं तो कै (उल्टी) होती है। अब क्या करें ?'

आखिर राजा था... राजवी आदमी को किस समय क्या करना चाहिए उसकी थोड़ी-बहुत सूझ-बूझ तो होती ही है। रैदासजी को बुरा भी न लगे और पानी भी न पीना पड़े, इसलिये राजा ने मुँह घुमा लिया और पीने की अदा करके कटोरी का पानी कोट के अंदर कमीज पर गिरा दिया ताकि बाहर भी न ढुले। राजा ने वहाँ से विदा ली।

महल में आकर काशीनरेश ने अपने खास धोबी को बुलवाया और कहा : ''इस कमीज को चुपचाप धुलवा देना। किसी को पता न चले।''

धोबी : ''क्या हुआ, राजन् !''

राजा : ''यह मत पूछो। बस, इसको जल्दी से धुलवाकर भिजवा देना।''

धोबी ने अपनी बेटी सुजलु को वह कमीज धोने के लिए दे दी। राजा साहब की कमीज धोते समय उस रंग का उसे स्पर्श हुआ। स्पर्श होते ही सुजलु भीतर से ईश्वरीय रंग में रँगती गयी। कमीज का बाहर का रंग धुलता गया और सुजलु के हृदय में प्रेमरस उभरने लगा, ईश्वरीय मस्ती उभरने लगी।

प्रेम न खेतों ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा चहो प्रजा चहो, शीश दिये ले जाय॥

रैदासजी ने उस चमड़े के पानी के रूप में आत्मशांति का, भक्ति का प्रेम-प्रसाद दिया था। राजा को तो अपने राजापने का अहं था अतः उसने तो पानी गिरा दिया लेकिन धोबी की वह बच्ची निर्दोष थी, अहंकाररहित थी अतः उस पानी के स्पर्श से ही उसे भक्ति का, ईश्वरीय मस्ती का प्रसाद मिल गया।

संत-महापुरुष कब, कैसे, किस पर कृपा कर दें कहना कठिन है लेकिन उनकी कृपा पचाने का अधिकारी वही होता है जो छल-कपट एवं अहंकाररहित होता है। 'श्रीरामचरितमानस' में भी आता है :

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

रैदासजी के उस कृपा-प्रसाद युक्त जल के स्पर्श से धोबी की बच्ची सुजलु की सुषुप्त शक्ति जाग्रत हो उठी। वह शांत भाव से बैठती तो उसे अंदर से आनंद आने लगता। कभी हँसने लगती तो कभी आँसू बहने लगते, कभी-कभी प्रेमविभोर होकर नृत्य करने लगती... ऐसा करते-करते उसकी आंतरिक योग्यता विकसित होती गयी। उसकी निष्कामता एवं ईश्वरीय मस्ती बढ़ती गयी। उसकी वाणी सुनकर लोग प्रभावित होने लगे। दो, पाँच, पंद्रह, पचीस... करते-करते कई लोग उसके दर्शन-सत्संग के लिये आने लगे।

धीरे-धीरे उसकी ख्याति उस पुण्यात्मा मंत्री तक पहुँची जिसने काशीनरेश को संत रैदासजी से मिलवाया था। सुजलु का दर्शन-सत्संग करने वह

उसके घर गया। वह स्वयं भी रँगा हुआ तो था ही, समझदार भी था। सुजलु के वचन सुनकर बड़ा प्रभावित हुआ एवं राजा से कहा :

''राजन्! आप रैदासजी के पास गये तो सही लेकिन 'वे मोची हैं' ऐसा सोचकर उनके सत्संग का लाभ नहीं ले पाये। खैर, सुजलु तो आपके धोबी की पुत्री है। अपने धोबी की पुत्री के पास जाने में क्या हर्ज है ? राजन्! आप उससे तो सत्संग-लाभ उठा ही सकते हैं।''

मंत्री के आग्रह से राजा सुजलु के पास गये और बोले : ''सुजलु! मुझे शांति चाहिए।''

जिन्हें परमात्म-तत्त्व का साक्षात्कार हो गया है ऐसे महापुरुष जो वस्त्र पहनते हैं उसमें भी उनके आध्यात्मिक आन्दोलन (वायब्रेशन) होते हैं। वे जिस वस्तु को छू देते हैं वह भी प्रसाद हो जाती है। जिस पर उनकी निगाहें पड़ती हैं वह भी निहाल हो जाता है।

यद् यद् स्पृश्यति पाणिभ्यां यद् यद् पश्यति चक्षुषा।
स्थावरणापि मुच्यन्ते किं पुनः प्राकृताः जनाः॥

'ब्रह्मज्ञानी महापुरुष ब्रह्मभाव से जिन जड़ पदार्थों को अपने हाथों से स्पर्श करते हैं, आँखों के द्वारा देखते हैं वे भी कालांतर में जीवत्व पाकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, तो फिर उनकी दृष्टि में आये हुए व्यक्तियों के देर-सबेर होनेवाले मोक्ष के बारे में तो शंका ही कैसी ?'

भले ही वह कठौती का पानी था, चमड़े के रंग से रँगा हुआ पानी था लेकिन रैदासजी के करकमलों के स्पर्श को प्राप्त हुआ था, उनकी कृपादृष्टिवाला पानी था एवं उसमें उनका सत्य संकल्प भी था तो उसका प्रभाव पड़ा।

सुजलु ने कहा : ''राजन्! आप मेरे पास शांति लेने आये हैं ? आपकी कमीज धोकर तो मैं इतनी महान् हुई हूँ और आप मुझसे शांति पाना चाहते हैं ?''

राजा की बुद्धि में प्रकाश हुआ कि : 'अरे! मैंने मिला हुआ मौका खो दिया... मैं रैदासजी को नहीं पहचान पाया...'

अगर है शौक मिलने का,
तो कर खिदमत फकीरों की।
ये जौहर नहीं मिलता,
अमीरों के खजाने में॥

संत-महापुरुष का बाह्य वेश या व्यवहार देखकर ही उनके बारे में अनुमान लगा लेनेवाले, निंदकों के चक्कर में आनेवाले यूँ ही कोरे-के-कोरे रह जाते हैं। उनके कृपा-प्रसाद को तो वे ही पचा पाते हैं जो निरभिमानी होकर उनके श्रीचरणों में नतमस्तक होते हैं।

मीरा ने पहचाना था रैदासजी को। उन्होंने सच्ची श्रद्धा से रैदासजी के श्रीचरणों में सिर झुकाया था और उनकी कृपा-प्रसाद को पचायी थी। उनका मार्गदर्शन पाकर मीरा लाखों विघ्न-बाधाओं के बीच भी मेवाड़ में, प्रभु-प्रेम में मग्न होकर नाचती रहीं, गुनगुनाती रहीं, मुस्कुराती रहीं।

छोटी जाति में जन्म लेकर भी रैदासजी ने उन ऊँचाइयों को छुआ था, जहाँ विरले ही पहुँचते हैं। वे स्वयं कहते हैं :

जाति भी ओछी, करम भी ओछा,
ओछा किसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है,
कह 'रैदास' चमारा॥

उनके ईश्वर-प्रेम से परिपूर्ण इस भजन को तो आज भी भारतवासी बड़े प्रेम से गाते हैं :

प्रभुजी ! तुम चंदन हम पानी।
जाकी अँग अँग बास समानी॥
प्रभुजी ! तुम घन बन हम मोरा।
जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभुजी ! तुम दीपक हम बाती।
जाकी जोति बरै दिन राती॥
प्रभुजी ! तुम मोती हम धागा।
जैसे सोनहिं मिलत सुहागा॥
प्रभुजी ! तुम स्वामी हम दासा।
ऐसी भक्ति करै रैदासा॥

*

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १००वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया मार्च २००१ के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

अपनी योग्यता बढ़ाओ

जीवन जीने के दो मार्ग हैं : श्रेय मार्ग और प्रेय मार्ग। श्रेयस् बोलता है : 'दे दो... दे दो... अपने पास जो कुछ भी हो उसे दूसरों की सेवा में लगा दो। अपना तन-मन-धन दूसरों के आनन्द में लगा दो, दूसरों की आवश्यकतापूर्ति में लगा दो।' प्रेयस् बोलता है : 'ले लो... ले लो... अपने पास बहुत कम है, जितना मिले उतना ले लो। उसे सँभालकर रखो।'

प्रेय मार्ग पर चलने से लेते-लेते आप इतने दब जाते हो कि जड़ी-भाव को प्राप्त होते हो और श्रेय मार्ग पर चलने से देते-देते आप इतने विशाल हो जाते हो कि आखिर में सिर्फ आप ही रहते हो, और कुछ नहीं रहता।

सद्गुरु हमेशा श्रेयस् देते हैं। वे हम पर अपना आध्यात्मिक खजाना लुटा देते हैं लेकिन कोई-कोई ही विरले होते हैं जो इस अमूल्य रत्न को झेल पाते हैं। जिसकी जितनी योग्यता, उतना ही लाभ वह उठा सकता है। सद्गुरुओं का जीवन कृतकृत्यता से भरा होता है, कल्याणपूर्ण होता है। जब कोई योग्य अधिकारी ही न मिले तो वे क्या करें ?

संत ज्ञानेश्वर महाराज से किसी एक भोली माई ने पूछा : ''जब भगवान सबके हैं, तो वे सबको आत्मप्रसाद क्यों नहीं दे देते ?''

संत ज्ञानेश्वर : ''भगवान तो सबके लिए एक सरीखे दाता हैं लेकिन सबको एक सरीखा लेने की अटकल नहीं है तो उसमें भगवान या संत या गुरु क्या करें ? योग्यता के अनुरूप व्यवहार होता है।''

उस नासमझ माई ने इतना सुनने पर भी फिर से कहा : ''योग्यता, अधिकार यह सब संतों को क्या देखना ? उन्हें तो आत्मरस सबको दे देना चाहिए।''

संत ज्ञानेश्वर महाराज ने सोचा कि : 'यह माई ऐसे समझनेवाली नहीं है। इसको तो प्रत्यक्ष प्रमाणित करके समझाना पड़ेगा।' वे पहुँचे हुए संत थे। उन्होंने अपने संकल्प से एक लीला रची।

जहाँ ज्ञानेश्वर महाराज और वह माई बातचीत कर रहे थे वहाँ एक भिखारी आया और भिखारी ने उस माई से एक रुपया माँगा।

माई ने क्रोधित होकर कहा : ''चल भाग यहाँ से। बड़ा आया एक रुपया माँगने !''

इस प्रकार भिखारी को उस माई ने भगा दिया।

अब संत ज्ञानेश्वर ने अपनी ओर से लीला शुरू की। उन्होंने माई को उसके हाथ के सोने के कंगन की ओर इशारा करके कहा : ''माई ! इसमें से एक-दो कंगन मुझे दे दो न ! पास के गाँव में भंडारा कराना है।''

माई ने तुरंत अपने सारे-के-सारे कंगन उतारकर कहा : ''एक-दो क्यों ? आप इन चारों कंगनों को रख लीजिये, काम आयेंगे।''

संत ज्ञानेश्वर : ''आश्चर्य है ! अभी-अभी तुमने ही उस भिखारी को एक रुपया तक देने से इन्कार कर दिया और मेरे एक कंगन माँगने पर अपने चारों कंगन देने को राज़ी हो गई !''

माई : ''भिखारी को मैं एक रुपया भी कैसे देती ? वह तो एकदम गिरा हुआ इन्सान था और आप तो संत हैं, महापुरुष हैं। आपको देकर मेरा दिल खुश होता है।''

तब संत ज्ञानेश्वर महाराज ने कहा :

''देखो, नश्वर चीज देने में भी योग्यता देखनी पड़ती है तो संतजन, गुरुजन जब आध्यात्मिक खजाना बाँट रहे हों तब उन्हें भी अधिकारी तो चुनने ही पड़ते हैं। फिर भी वे इतने दयालु हृदय होते हैं कि योग्यता से ज्यादा ही सबको देते आये हैं। इसके बावजूद सबको उनकी कद्र नहीं होती।''

भगवान के प्यारे संतों में, सद्गुरुओं में हम सबकी अटूट श्रद्धा बन जाए, आत्मरस पाने की तत्परता अंत तक बनी रहे तो बेशक हम पर बरसी कृपा पचेगी।

अहं को मिटाओ...

एक महात्माजी से किसी राजा ने पूछा :

''बाबाजी ! आप ८० वर्ष के हो गये हैं। आप बताइये कि आपके पूरे जीवन का अनुभव क्या है ?''

महात्मा ने उसी क्षण अपना मुँह खोलकर दिखाया और कहा : ''यही मेरे जीवन का अनुभव है।''

राजा : ''मैं कुछ समझा नहीं।''

महात्मा : ''बेटा ! कड़े दाँत बाद में आये थे और अपने कठोर स्वभाव के कारण पहले चले गये किन्तु जो जीभ दाँतों के आने से पहले भी थी वह अपने मुलायम स्वभाव के कारण अभी-भी है।

ऐसे ही जो अहंकार से अकड़कर 'मैं... मैं...' करता है उसीको जन्म-मरण की, सुख-दुःख की, स्वर्ग-नर्क की चोटें लगती रहती हैं जिसे अपने आत्मस्वरूप का ज्ञान हो गया है, जिसे अपने देह की नश्वरता का ज्ञान हो गया है, जिसने अपने 'मैं' को मिटा दिया है, वह तो मुक्त हो ही जाता है, औरों को भी उस मुक्ति-पथ पर ले चलता है।''

जैसे, हमारे दाँत अपने कड़ेपन के कारण लम्बे समय तक नहीं टिकते हैं, ऐसे ही 'मैं-मैं' के अकड़पन के कारण जीव भी सदैव नहीं टिकता है। फिर चाहे धन का 'मैं' हो या कुर्सी का, वह सदा नहीं टिकता। न सत्ता का 'मैं' टिक सकता है, न सौंदर्य का और न ही विद्वत्ता का 'मैं' टिक सकता है। समय पाकर सब मिट जाता है। भले थोड़े दिन के लिए वह सब अमिट-सा लगे लेकिन मृत्यु आकर तो सबको मिटा ही देती है। अतः सावधान ! मृत्यु आकर सब मिटा दे, उसके पहले अपने 'अहं' को परमात्मा में मिटाने का यत्न कर लेना चाहिए।

किसीकी मूर्खता को देखकर अपने को विद्वान् मान लेना, किसीकी दरिद्रता को देखकर अपने को धनवान् मान लेना, किसीकी कुरूपता को देखकर अपने को रूपवान् मान लेना, किसी गृहस्थ के आगे अपने को साधु एवं किसी भोगी के आगे अपने को त्यागी मान लेना... वास्तव में यह सब माया का खिलवाड़मात्र है, अहं की करतूतमात्र है। ये सब शाश्वत् नहीं हैं, सदैव टिकनेवाले नहीं हैं। शाश्वत् तो केवल एक परमात्मा है और उस सच्चिदानंद परमात्मा की प्राप्ति केवल 'मैं' को मिटाने से, अहं को मिटाने से ही संभव है।

राजकुमार का विवेक

एक युवराज घर छोड़कर भगवान के रास्ते गया और वृंदावन में जाकर रहने लगा। वहाँ उसने गुरु से दीक्षा ली और भजन करने लगा। राजा को जब इस बात का पता चला तो वह वृंदावन गया एवं गुरुजी के पास जाकर उसने कहा : ''महाराज ! मेरा राजकुमार आपका शिष्य बना हुआ है, उसे समझा-बुझाकर घर भेज दें। मैं आपके चरण पकड़ता हूँ।''

लोगों को हुआ कि राजकुमार को वापस नहीं भेजेंगे तो राजा तो राजा होता है। वह अपने बल का भी उपयोग कर सकता है।

राजकुमार उस वक्त आश्रम के कार्य से कहीं बाहर गया हुआ था। दूसरे गुरुभाई ने जाकर राजकुमार को बताया कि : ''आपके पिताजी आपको लेने आये हैं एवं गुरुजी ने भी कहा है कि आप अपने पिता के साथ जायें, राज-काज सँभालें एवं कभी-कभी इधर आते रहें।''

राजकुमार बड़ा सयाना और चतुर था। उसने तवे की कालिख में तेल मिलाकर उसका काजल बना लिया और उस काजल से अपने मुँह को पोतकर काला कर दिया। फिर एक गधे पर बैठकर गुरुजी के पास पहुँचा। राजा देखकर चौंक उठा ! 'यह क्या ? राजकुमार गधे पर बैठकर आया है और उसने मुँह भी काला कर लिया है !' राजा ने पूछा : ''पुत्र ! तुम्हारा मुँह किसने काला किया ?''

राजकुमार : ''पिताजी ! किसीने नहीं किया है। मैंने स्वयं ही अपने हाथों से मुँह काला कर लिया है। शास्त्रों में आता है कि **जो ईश्वर के रास्ते, गुरु के रास्ते चले और फिर यदि उसे छोड़कर जाये तो उसे मुँह काला करके, गधे पर बैठकर अपने गाँव वापस जाना चाहिए।** इसलिये मैंने अपना मुँह काला कर लिया है और अब गधे पर बैठकर आपके साथ, आपके राज्य में चलूँगा।''

पिता ने अपने ढंग से समझाया : ''पहले अपना मुँह धो ले और घोड़े पर बैठकर राज्य में चल।''

राजकुमार : ''नहीं, यह शास्त्र का नियम है। जिसने एक बार गुरु और ईश्वर के रास्ते चलने के लिये कदम रख दिये तो उसे लौटना नहीं चाहिए। फिर भी वापस जाने की बात आये तो उसे काला मुँह करके गधे पर बैठकर जाना चाहिए।''

यह मारग है अटपटा, जैसे लंबी खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रभुरस, गिरे तो चकनाचूर॥

राजा ने बहुत समझाया। गुरु ने भी कहा : ''बेटा ! शास्त्र की बात है तो सही लेकिन तेरे पिता तुझे लेने आये हैं। तू राजकुमार है अतः तू राजा बन सकता है।''

राजकुमार : ''राजा बनूँगा तो क्या हो जायेगा ? एक बार ईश्वर के मार्ग पर कदम रख दिये फिर वापस जाना... यह तो नहीं हो सकेगा।''

आखिर पिता तो पिता था, राजा भी था। समझदार तो था ही। उसे हुआ कि : 'ईश्वर के मार्ग पर चलनेवाले पुत्र पर मैंने जबरदस्ती की। फिर भी पुत्र बड़ा विवेकी है।'

राजा : ''अच्छा, बेटा ! तू वापस मत आ। यहीं रह। मैं ही कभी-कभी आ जाया करूँगा। कभी तेरी माँ आ जायेगी। तू केवल हमें मिलने का कष्ट करना।''

राजकुमार : ''पिताजी ! आप यह आग्रह भी क्यों रखते हैं ? मिलना ही हो तो अपनी आत्मा से मिलें। इस शरीर से क्या मिलना ? यह तो दृश्य है जबकि द्रष्टा तो आपका और मेरा दोनों का एक ही है।''

मनुष्य ज्यों-ज्यों सत्संग करता है त्यों-त्यों उसे दृश्य से उपरामता आती जाती है और द्रष्टा में प्रीति होती जाती है। द्रष्टा कह दो, आत्मा कह दो, ब्रह्म-परमात्मा कह दो... ये एक ही सत्य के अनेक नाम हैं।

जब इन्सान का विवेक-वैराग्य जागता है, ईश्वरप्राप्ति की इच्छा तीव्र होती है तो संत-महापुरुषों के चरणों में उसकी प्रीति दृढ़ हो जाती है।

राजकुमार का भी तीव्र विवेक-वैराग्य जाग उठा था। पिता वापस लौट गये। साधना करते-करते वह राजकुमार मुक्तात्मा हो गया, ब्रह्मज्ञानी हो गया।

कैसी दिव्य समझ थी राजकुमार की ! एक बार गुरु के दर पर आ गये तो आ गये फिर क्यों लौटना ? मानों, उसने दृढ़ निश्चय कर रखा था कि :

आये हैं तेरे दर पर, तो कुछ करके उठेंगे...
नहीं तो मरके उठेंगे।

उसकी दृढ़ता ने काम किया और वह अपने जीवन-ध्येय को पाने में सफल भी हो गया। धन्य हैं वे सत्शिष्य और वे साधक !

भारतवासियों ! अब जागो

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

शास्त्रों में आता है :

पूर्वे जनुषि या नारी गर्भघातकरी ह्यभूत्।
गर्भपातेन दुःखार्ता साऽत्र जन्मनि जायते॥

'जो स्त्री पूर्वजन्म में गर्भ का घात करती है, वह इस जन्म में भी गर्भपात का दुःख भोगनेवाली होती है अर्थात् उसके कोई संतान नहीं होती।'

अपने पेट में दवाएँ डलवाकर अथवा कातिल साधनों द्वारा बालक के टुकड़े-टुकड़े करके गर्भपात करवाना क्या पवित्र कार्य कहा जायेगा ? गर्भपात को पाप ही नहीं, महा पाप माना गया है। जिस महिला ने गर्भपात करवाया हो, उस महिला के हाथ का भोजन करने से साधु-संतों की भी तपस्या नष्ट होती है तो उसके घर के लोगों के कितने पुण्य बचते होंगे ?

सोनोग्राफी करायी... कन्या है तो करवा दो गर्भपात... कई बार तो कन्या होती ही नहीं है, पुत्र होता है, परन्तु पैसों की लालच में सोनोग्राफीवाले कन्या बता देते हैं।

उल्हासनगर, नंबर-३ में एक परिवार में प्रथम एक कन्या आयी। दूसरी संतान पुत्र हो, इस कामना से वे दम्पति सत्संग में आये। पाँचवें महीने सोनोग्राफी करायी गयी तो डॉक्टर ने कहा : ''कन्या है।'' वे लोग घबरा गये। फिर वे अमदावाद आश्रम आये एवं 'बड़ बादशाह' की प्रदक्षिणा करके उन्होंने पुत्रप्राप्ति के लिए मनौती मानी।

जब नौवाँ महीना शुरू हुआ तो उन्होंने पुनः सोनोग्राफी करवायी। रिपोर्ट में आया कि : 'लड़की है।' यह सुनकर पति-पत्नी खूब रोये। रात्रि में स्वप्न में उनके गुरुदेव ने कहा : ''**घबराओ नहीं,**

बेटा होगा।''

अतः गर्भपात के महा पाप से तो वे बच गये लेकिन उनका रोना जारी रहा। जब प्रसूति हुई और बेटा आया तो वे बोल पड़े : ''पूज्य बापू ने लड़की में से लड़का बना दिया है।''

मैं व्यासपीठ पर बैठा हूँ, सत्य कहता हूँ कि मैंने लड़की में से लड़का नहीं बनाया, वह सचमुच में लड़का ही था। केवल स्वप्न में उन्हें प्रेरणा मिली कि 'लड़का है, घबराओ नहीं।'

अगर कन्या भी आ जाये तो क्या है ? आनेवाले ५-७ वर्षों के बाद आप देखेंगे कि अभी जिन कन्याओं के माँ-बाप को लड़के के माँ-बाप को हाथ जोड़ने पड़ते हैं उन्हीं को लड़के के माँ-बाप हाथ जोड़ेंगे कि : 'हमारा बेटा कुँवारा है, कुछ कर दीजिये।'

आज से ५२-५३ वर्ष पूर्व मेरे भाई की जो शादी हुई थी वह हाथा-जोड़ी करके ही हुई थी क्योंकि उस जमाने में लड़के ज्यादा थे, कन्याएँ कम। मेरे नगरसेठ पिता ने अपने आदमी के द्वारा एक हलवाई के यहाँ हाथ जोड़कर यह संदेश भिजवाया कि : 'आपके यहाँ कन्या है, हमारे जेठानंद की कुछ व्यवस्था करवा दें।' चौदह वर्षीय जेठानंद कहीं शादी के बिना न रह जाये अतः १२-१३ वर्ष की कन्या एवं चौदह वर्षीय जेठानंद का 'मंगलम् भगवान...' हुआ अर्थात् विवाह हुआ।

विभाजन के बाद भारत आये फिर भी वर्षों तक दोनों को पता ही नहीं था कि वे पति-पत्नी हैं। वे लोग साथ में खेलते थे, मैं भी उनके साथ खेलता था। जब कबड्डी के खेल में मेरा भाई भाभी को हराने के लिये हाथ मारता तो वह कहती : ''परायी कन्या को मारता है ? आज एकादशी है, तुझे शरम नहीं आती है ? मुए !''

उस भाभी को पता नहीं था कि वह जिसे 'मुआ' कह रही है वही उसका पति है। वर्षों के बाद उन्हें पति-पत्नी के जगत का ख्याल आया।

कहने का तात्पर्य यह है कि 'गर्भ में कन्या है' यह मानकर गर्भपात न करवायें। गर्भपात महा पाप है। संयम से जियें।

कई लोग ऐसा प्रचार करते हैं कि : 'खुदा की खेती है, बढ़ने दो... बस्ती बढ़ेगी तो 'वोट बैंक' बढ़ेगा, अपनेवाले आयेंगे और अपनेवालों का यहाँ झण्डा भी लगेगा।' तो कई लोग कहते हैं कि : 'Gift of the God' अर्थात् बच्चा भगवान का दिया हुआ उपहार है। बढ़ाये जाओ... ऐसा होगा तो भारत में हमारा साम्राज्य पुनः स्थापित होने की संभावना बढ़ जायेगी...' जबकि गीता-रामायण एवं उपनिषदों में, भगवन्नाम में, परोपकार एवं सहिष्णुता में विश्वास रखनेवाली जनता को सिखाया जाता है कि : **'गुलशन में बस एक ही फूल, दूसरी कभी न होवे भूल... दूसरा अभी नहीं, तीसरा कभी नहीं।'** किन्तु दूसरे लोगों के ८-८ और १२-१२ हैं, उसका क्या ?

कोई कहे कि : 'उन्हें भले हैं हमें तो सिंह जैसा एक ही बेटा हो तो बहुत है।' परन्तु भैया ! वोटिंग का जमाना है। आपका सिंह पिंजरे में भूखा रहेगा और बकरेवालों का राज्य हो जायेगा। थोड़े समझदार बनो। एक का एक बेटा है... बेटी तो ससुराल गयी और न करे नारायण... बेटा पत्नी के संग में आकर घरजमाई बन जाये तो आपका कौन ? विदेश में कमाने गया अथवा देश की सीमा पर गया तो आपका कौन ? न करे नारायण... फिर भी बीमार पड़े या दुर्घटनाग्रस्त हो जाये तो आपका कौन ? थोड़ा समझ जाओ, भैया !

कम-से-कम देश को ऐसे २-४ बेटे देते जाना जो भारतीय संस्कृति के संस्कारों से संपन्न हों। यह भी देश की सेवा है। एकाध परदेश से पैसे खींच लाये, एकाध देश की रक्षा के लिये सेना में जाये, एकाध यहीं रहकर समाज एवं धर्म की सेवा में लगे और एकाध माता-पिता की सेवा करे।

जल्दबाजी में ऑपरेशन मत करवा लेना। जो शराबी-कबाबी हैं और जिन्हें राष्ट्र से प्रेम नहीं है ऐसे लोग शादी से पहले ही ऑपरेशन करवा दें तो राष्ट्र का भला होगा। लेकिन जिनमें भगवान की भक्ति है, परोपकारिता है, दिव्य ज्ञान है वे कभी ऑपरेशन न करायें, गर्भपात की तो बात भी न करें।

कोई कहे : ''बापू ! बस्ती बढ़ जायेगी तो लोग खायेंगे क्या ?''

जनसंख्या-नियंत्रण का काम परमात्मा का है, किसी नेता या व्यक्ति का नहीं। जब भारत की जनसंख्या ४० करोड़ थी तब गेहूँ, खाद्य तेल वगैरह बाहर से आता था। आज १०० करोड़ से भी ऊपर का आँकड़ा है और भारत से चावल एवं अन्य खाद्य

सामग्रियाँ विदेशों में जा रही हैं । **आवश्यकता आविष्कार की जननी है ।** जनसंख्या बढ़ेगी तो आवश्यकताएँ भी बढ़ेंगी और आवश्यकताएँ बढ़ेंगी तो नये-नये आविष्कार भी होंगे ।

'क्या खायेंगे ?' यह सोचकर अपने ही बच्चों को मार देना कहाँ तक उचित है ? जो जीव ८४ लाख योनियों में भटकते-भटकते आप जैसे पवित्र कुलों में दिव्य ज्ञान पाने, भक्ति, साधना-सेवा करके मुक्ति के मार्ग पर जाने के लिये आया, उसीको आप पैसे देकर, जहरीले दवाओं-इन्जेक्शनों के द्वारा अथवा कातिल औजारों के द्वारा टुकड़े-टुकड़े करवाकर फिंकवा दोगे ?

डॉक्टरों की एक गुप्त बात है : 'Work number one finished or not ?' अर्थात् पहले नंबर का काम पूरा हुआ कि नहीं ? पहले नंबर का काम क्या है ? गर्भ के अंदर जो बालक है उसके सिर के टुकड़े-टुकड़े हुए कि नहीं ?

आपके यहाँ जो निर्दोष नन्हा-मुन्ना आनेवाला था, जिसने आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ा था, गर्भ में जिसके आने मात्र से आपको (गर्भ धारण करनेवाली पत्नी को) आनंद मिला था, ऐसे निर्दोष ऋषि के आप टुकड़े-टुकड़े करवाकर कचरे में फिंकवा दो, यह कहाँ तक उचित है ?

यह कर्मभूमि है । जो जैसे कर्म करता है, वैसे ही फल पायेगा ।

करम प्रधान बिस्व करि राखा ।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा ॥

(श्रीरामचरित० अयोध्या काण्ड : २१८.२)

गर्भपात 'भ्रूणहत्या' कहलाती है । इन्सान की हत्या से धारा '३०२' की कलम लगती है, परन्तु भ्रूणहत्या ऋषि-हत्या के तुल्य है । परलोक में उसकी सजा अवश्य भुगतनी पड़ती है ।

शास्त्रकारों ने तो ऐसा भी कहा है कि जो महिला गर्भपात कराती है, उसे फिर १०-१० जन्मों तक संतान नहीं होती । अतः आज तक जो भूल हो गयी उसका प्रायश्चित करके फिर वह भूल न दोहरायी जाये- इसकी सावधानी रखो ।

'जनसंख्या बढ़ जायेगी...' ऐसी चिंता करवानेवालों को ही इसकी चिंता करने दो । वे तो रोज संख्या बता देंगे । थोड़ा विवेक का उपयोग करो, संयम एवं समझ का उपयोग करो ।

जो जीव पवित्र कुल, पवित्र वातावरण में आने की इच्छा रखता है उसे टुकड़े-टुकड़े करवाकर नाली में फेंक दोगे और वही जीव फिर आपके देश में 'बम ब्लास्टिंग' करे ऐसे परिवार में जायेगा तो ? आपके देश के टुकड़े करवानेवाली संस्कृति में जाकर जन्म लेगा तो ? आपके देश में हर साल डेढ़ करोड़ बालकों को सात्त्विक लोगों के यहाँ आने से रोककर नाली में फेंक दिया गया, वे ही फिर विधर्मियों के यहाँ जन्म लें तो आपको वर्ष में ३ करोड़ जनसंख्या की हानि होगी । फिर आप कहाँ जाकर रहोगे ?

दुबई में मंदिर बनाने की सख्त मनाई है । एक जगह पर कुछ लोग गुप्त रूप से मंदिर बना रहे थे तो उन पर डंडे पड़े और उन्हें कहा गया कि : 'यहाँ नहीं बनाना है ।' अमुक पर्व-त्यौहार पर आप एयरपोर्ट पर उतरो एवं आपके हाथ में कोई अच्छी पुस्तक हो जिसमें किसी देवी-देवता का फोटो हो तो आपको वापस भेज दिया जायेगा । फिर आप कहाँ रहने जाओगे ? जो राष्ट्र धर्मनिरपेक्ष नहीं हैं वहाँ तो दूसरे धर्म के लोग अपना पूजा-स्थल नहीं बना सकते लेकिन जो राष्ट्र धर्मनिरपेक्ष कहलाते हैं वे भी व्यवहार में अपने धर्म को बढ़ावा देनेवाली नीति ही अपनाते हैं । जैसे कि स्विट्जरलैण्ड में दूसरे धर्म के लोग अपना पूजा-स्थल नहीं बना सकते । जबकि आपके देश में बीच रास्ते में भी लोग अपना पूजा-स्थल बना लेते हैं । अतः आपके ही देश में आपको सौतेली माँ की संतान के रूप में न चलना पड़े, इसके लिये जरा सावधान हो जाओ ।

अपने मन के साथ, अपने शरीर के साथ, अपनी संतानों एवं राष्ट्र के साथ जुल्म न करो । अपने शरीर को स्वस्थ रखो, संयमी बनो एवं राष्ट्र के लिये अपनी संतति को भी स्वस्थ एवं संयमी बनाओ । स्वयं भी महानता के पथ पर चलो और अपनी संतति को भी उसी पर अग्रसर करो । इसके लिये सत्शास्त्रों का अध्ययन, संतों का संग, सत्संग का श्रवण, जप-ध्यान, साधन-भजन करो ताकि आपकी बुद्धि में बुद्धिदाता का प्रकाश आये... आपकी बुद्धि, बुद्धि न रहे, ऋतंभरा प्रज्ञा बन जाये... तभी आपका मानव जीवन सार्थक होगा, धन्य-धन्य होगा । आप भी तरोगे, अपने सात कुल के भी तारणहार बनोगे ।

ॐ आनंद... ॐ... ॐ...

गुजरात में आये भूकंप पर विशेष

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

मंगलमय जीवन-मृत्यु

किसी भी आकस्मिक दुर्घटना से धैर्य न छोड़ो, क्योंकि घबराहट से शक्ति तथा बुद्धि का नाश होता है। किसी भी प्रकार की कठिनाइयों के आगे दुःखी न होकर गम्भीरतापूर्वक उनका सामना करो, तभी तुम निःसन्देह विजय प्राप्त करोगे। तुम कहीं भी हतोत्साहित होकर निराश न होओ।

जीवन और मृत्यु जीव की अनंत अनंत यात्राओं के दो पड़ाव हैं। रात के बाद दिन, दिन के बाद रात होती है। इसी तरह चोले बदलते हुए... अनुभवों से गुजरते हुए अपने आत्मस्वरूप को, ब्रह्मस्वरूप को पाने के लिये मंगलमयी व्यवस्था है। तत्त्वदृष्टि से देखा जाय तो यह जीवन-मृत्यु की यात्रा प्रकृति में हो रही है जीव को परमात्मस्वरूप में जगाने के लिये।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीर ॥

'तत्त्वतः यह आत्मा न कभी जन्मता है और न मरता है। न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है। यह जन्मरहित, नित्य निरन्तर रहनेवाला, शाश्वत् और पुरातन (अनादि) है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।' (भगवद्गीता : २.२०)

जीवन जितना प्यारा है, मृत्यु भी उतनी ही आवश्यक है। रात्रि से अरुणोदय, अरुणोदय से फिर मंगलमयी रात्रि की अनिवार्य आवश्यकता है। विराट की यह प्रचण्ड क्रीड़ा तुम्हें अपने विराट स्वभाव में जगाने के लिये आवश्यक है।

जिस बंदी को कल फाँसी पर चढ़ना है उसको देखकर राजा तेगबहादुर ने अपने पर ईश्वर की कृपा का अहसास किया। ऐसा महसूस करते हुए वे बोले जा रहे थे कि : "हे ईश्वर ! मुझ पर तेरी खूब कृपा है। उस बंदी ने तो एक खून किया और उसे फाँसी लग रही है परन्तु मैंने तो कई उथल-पाथल की हैं फिर भी राजा बना बैठा हूँ..." आदि-आदि। उसे पता ही नहीं था कि उनके पीछे गुरुदेव आकर खड़े हैं। गुरुदेव ने कहा : "राजन् ! ईश्वर की जैसी कृपा तुझ पर है ऐसी ही उस बंदी पर भी है। उसका यह चोला, यह शरीर लेकर उसे नया तन, नई सूझ-बूझ देकर ईश्वर उसकी उन्नति करवाना चाहता है। तेरी सूझ-बूझ और मनोबल से समाज की सेवा कराके तेरी उन्नति करवाना चाहता है। जैसे ऊँचे मंदिर में पहुँचने के लिये एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर कदम आगे बढ़ाना होता है ऐसे ही जीवात्मा को ईश्वरीय अनुभव की आखिरी यात्रा तक कई परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है, कई देह बदलनी पड़ती हैं।

देह नश्वर है। आत्मा शाश्वत् है। शरीर और सुख-दुःख अनित्य हैं, परन्तु उनको देखनेवाला शाश्वत् आत्मा-परमात्मा है। ॐ... ॐ... अपने नित्य परमेश्वर स्वभाव का चिंतन करके जाग जाये वही वास्तव में पूर्ण भाग्यशाली है।"

मृत्यु माने महायात्रा, महाप्रस्थान, महानिद्रा। अतः जो मर गये हैं उनकी यात्रा मंगलमय हो, आत्मोन्नतिप्रद हो ऐसा चिन्तन करें और उनकी सद्गति हेतु श्रीमद् भगवद्गीता के सातवें अध्याय का पाठ करें, न कि अपने मोह और अज्ञान के कारण उनको भी भटकाएँ और खुद भी परेशान हों।

कइयों की मृत्यु बाल्यकाल में या यौवन में हो जाती है। जैसे बच्चा खिलौनों में रम जाता है, खिलौने नहीं छोड़ना चाहता परन्तु मंगलमयी माँ बलात् उसे उठा लेती है, अपनी गोद में सुलाती है। अपनी उष्मा, सान्निध्य, विश्रांति से उसे हृष्टपुष्ट करके फिर नूतन प्रभात को उसे खेलने के लिए क्रीडांगन में भेज देती है। ऐसे ही जीवात्मा का क्रीडांगन संसार है। अतः अनेक शरीर बदलते हुए अबदल की मंगलमय यात्रा करने के लिये जीवन और मृत्यु को मंगल विधान समझकर ईश्वर की हाँ-में-हाँ करते हुए अपनी यात्रा उन्नत करें।

अभी जिसे तुम जीवन कहते हो वह जीवन नहीं और जिसे मृत्यु कहते हो वह मौत नहीं है। केवल प्रकृति में परिवर्तन हो रहा है। प्रकृति में सब परिवर्तनशील है। जिसका सर्जन होता दिखता है वही विसर्जन की ओर जाता नजर आता है। जहाँ नगर थे वहाँ वीरान हो गये, जहाँ बस्तियाँ थीं वहाँ आज उल्लू बोल रहे हैं और जहाँ उल्लू बोल रहे थे वहाँ बस्तियाँ खड़ी हैं, जहाँ मरुस्थल थे वहाँ आज महासागर हिलोरे ले रहे हैं और जहाँ महासागर थे वहाँ मरुस्थल खड़े हैं।

चाँद सफर में, सितारे सफर में।
हवाएँ सफर में, दरिया के किनारे सफर में।
अरे शायर ! यहाँ की हर चीज सफर में।
...तो आप बेसफर कैसे रह सकते हैं ?

आप जिस शरीर को 'मैं' मानते हैं वह शरीर भी परिवर्तन की धारा में बह रहा है। सात वर्ष में तो पूरा शरीर ही बदल जाता है ऐसा वैज्ञानिक भी कहते हैं। इस स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर का वियोग होता है अर्थात् सूक्ष्म शरीर देहरूपी वस्त्र बदलता है इसको लोग मौत कहते हैं।

मौत तो एक पड़ाव है, एक विश्रांति-स्थान है। उससे भय कैसा ? यह तो प्रकृति की एक व्यवस्था है। यह एक स्थानान्तर मात्र है। जैसे मैं अभी यहाँ हूँ। यहाँ से आबू चला जाऊँ तो यहाँ मेरा अभाव हो गया, परन्तु आबू में मेरी उपस्थिति हो गई। इस प्रकार मैं तो हूँ ही, मात्र स्थान का परिवर्तन हुआ।

तुम्हारी अवस्थाएँ बदलती हैं, तुम नहीं बदलते। पहले तुम सूक्ष्म रूप में थे। फिर बालक का रूप धारण किया। बाल्यावस्था छूट गई तो किशोर बन गये। किशोर में से जवान बन गये। जवानी गई तो वृद्धावस्था आ गई। तुम नहीं बदले, परन्तु तुम्हारी अवस्थाएँ बदलती गईं। हमारी भूल यह है कि अवस्थाएँ बदलने को हम अपना बदलना मान लेते हैं। वस्तुतः न तो हम जन्मते-मरते हैं और न ही हम बालक, किशोर, युवा और वृद्ध बनते हैं। ये सब हमारी देह के धर्म हैं और हम देह नहीं हैं। संतों का यह अनुभव है कि :

मुझमें न तीनों देह हैं, तीनों अवस्थाएँ नहीं।
मुझमें नहीं बालकपना, यौवन बुढ़ापा है नहीं॥
जन्मूँ नहीं मरता नहीं, होता नहीं मैं बेश-कम।
मैं ब्रह्म हूँ मैं ब्रह्म हूँ, तिहुँ काल में हूँ एक सम॥

मृत्यु नवीनता को जन्म देने में एक संधिस्थान है। जैसे, दिनभर के परिश्रम से थका हुआ मनुष्य रात्रि को मीठी नींद लेकर दूसरे दिन प्रातः नवीन स्फूर्ति के साथ जागता है वैसे ही, यह जीव अपना जीर्ण-शीर्ण स्थूल शरीर छोड़कर आगे की यात्रा के लिये नया शरीर धारण करता है।

अपने पति, पत्नी, पुत्र का नाम लेकर कहो कि : 'तुम वही हो... सचमुच में वही हो जो मरने के बाद भी नहीं मरता। ॐ... ॐ... ॐ... ! तुम चैतन्य आत्मा हो। ॐ... ॐ... ॐ... ! शाश्वत् परमेश्वर हो। ॐ... ॐ... ॐ... ! अविनाशी परमात्मा हो। ॐ... ॐ... ॐ... ! हे शाश्वत् आत्मा ! हे पुरातन ! हे अविनाशी ! नाशवान् संसार और शरीर बदलते हैं लेकिन तुम अबदल आत्मा हो। ॐ...ॐ...ॐ... ! बचपन बदल गया... यौवन बदल गया... बुढ़ापा बदल गया... शरीर बदल गया... फिर भी तुम हो। तुम वह अमर आत्मा हो जिस पर काल का भी कोई प्रभाव नहीं चलता। हे अकाल आत्मा ! अपनी महिमा में जागो।'

ऐसा चिन्तन करो कि : 'हे चैतन्यस्वरूप मेरे आत्मन् ! शरीर को... पाँच भूत के पुतले को त्यागने के बाद भी आपका अस्तित्व है।'

जो व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं उनके श्राद्ध के दिनों में तथा स्मरण के वक्त उन्हें सुझाव दो कि : 'जन्म-मृत्यु तुम्हारा धर्म नहीं था। पाप-पुण्य तुम्हारा कर्म नहीं था। तुम अज, अविनाशी, निर्लेप, शाश्वत्, सनातन नारायण के अंश हो। अतः अपने परमेश्वर स्वभाव को सँभालो... स्मरण करो।'

अपनी पत्नी को और स्वर्गस्थ पुत्र-परिवार को स्मरण करके उनको उन्नत करो और आप भी उन्नत बनो। जीते-जी भी परस्पर इसी भाव से उन्नत करो। मृत्यु मंगलमय हो जाय ऐसा वातावरण बनाओ।

जो चल बसे हों, उनको याद करके उनकी ओर दिव्य विचार, अमर आत्मा का सन्देश भेजो। इस प्रकार के विचार भेजने से मंगल करोगे और मंगल को पाओगे। जीवन मंगलमय होने लगेगा। मृतकों की मृत्यु भी मंगलमय हो जाएगी।'

संयम की शक्ति

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

स्वामी विवेकानंद अपने कुछ शिष्यों को वासना का क्षय करने एवं जितेन्द्रिय बनने के लिये निर्देश दे रहे थे। मन को काम से हटाकर राम में लगाना अत्यंत आवश्यक है- ऐसा वे उन्हें समझा रहे थे कि एक साधक ने पूछा : ''स्वामीजी ! आप कहते हैं कि मन को काम से हटाकर राम में लगाना चाहिए। यह कहना तो बहुत सरल है परन्तु इसे जीवन में उतारना अत्यंत कठिन लगता है। आप कोई ऐसी युक्ति बतायें कि जिससे मन में कामवासना उठे ही नहीं, वह काम का विचार ही छोड़ दे एवं भगवद्चिंतन करता रहे।''

स्वामीजी : ''तुम्हारी बात सच है कि मन को कामवासना से हटाना बहुत कठिन है लेकिन उसे एक बार भी वश कर लोगे तो वह जिंदगी भर तुम्हारे कहने में चलेगा। केवल ब्रह्मचर्य का पालन किया जाय तो अल्पकाल में ही सारी विद्याएँ आ जाती हैं, श्रुतिधर एवं स्मृतिधर हुआ जा सकता है। केवल ब्रह्मचर्य के अभाव के कारण हमारे देश का सत्यानाश हो रहा है। प्रजा के रूप में हम निर्बल होते जा रहे हैं एवं सच्ची मनुष्यता खोते जा रहे हैं।'' ऐसा स्वामीजी कहा करते थे। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मन की एकाग्रता एवं स्मरणशक्ति का तीव्रता से विकास होता है।

स्वामी विवेकानंद अपनी यूरोपयात्रा के दौरान जर्मनी गये थे। वहाँ कील यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर पॉल ड्यूसन स्वामी विवेकानंद की अद्भुत याददाश्त देखकर दंग रह गये थे। तब स्वामीजी ने रहस्योद्घाटन करते हुए कहा था : ''ब्रह्मचर्य के पालन से मन की एकाग्रता हासिल की जा सकती है और मन की एकाग्रता सिद्ध हो जाये फिर अन्य शक्तियाँ भी अपने-आप विकसित होने लगती हैं।''

संयम बड़ी चीज है। जो संयमी है, सदाचारी है और अपने परमात्मभाव में है, वही धर्मात्मा बनता है। जो विषय-विलास में गरकाव हो जाता है, वही दुरात्मा बनता है। लेकिन जो संयम करके परब्रह्म परमात्मा को 'मैं' रूप में जान लेता है वह महान् आत्मा हो जाता है, महात्मा हो जाता है।

ब्रह्मचर्य का ऊँचे-में-ऊँचा अर्थ यही है : ब्रह्म में विचरण करना। जो ब्रह्म में विचरण करे, जिसमें जीवभाव न बचे वही ब्रह्मचारी है। 'जो मैं हूँ वही ब्रह्म है और जो ब्रह्म है वही मैं हूँ...' ऐसा अनुभव जिसे हो जाये वही ब्रह्मचारी है।

संयम की आवश्यकता सभी को है। चाहे बड़ा वैज्ञानिक हो या दार्शनिक, विद्वान् हो या बड़ा उपदेशक, सभी को संयम की जरूरत है। स्वस्थ रहना हो तब भी ब्रह्मचर्य की जरूरत है, सुखी रहना हो तब भी ब्रह्मचर्य की जरूरत है और सम्मानित रहना हो तब भी ब्रह्मचर्य की जरूरत है।

कोई चारों वेद पढ़कर कंठस्थ कर ले एवं उसका अर्थ भी समझ ले - उसके पुण्य को तराजू के एक पलड़े पर रखें और दूसरे पलड़े पर कोई अँगूठाछाप है लेकिन आठ प्रकार के मैथुन से बचा है उसका पुण्य रखें तो ब्रह्मचारी का पलड़ा भारी होगा। वेद पढ़ना तो पुण्य है, कंठस्थ करना भी पुण्य है लेकिन कोई भले अँगूठाछाप है किन्तु संयमी है तो उसका पुण्य भी वेदपाठी से कम नहीं होता है। वह चतुर्वेदी से कम नहीं माना जायेगा। संयम ऐसी चीज है !

ब्रह्मचर्य बुद्धि में प्रकाश लाता है, जीवन में ओज-तेज लाता है। ब्रह्मचर्य ऊँची समझ लाता है कि : 'अपनी आत्मा ब्रह्म है, उसको पहचानना ही हमारा लक्ष्य है।' अगर ब्रह्मचर्य नहीं है तो गुरुदेव दिन-रात ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते हैं फिर भी टिकता नहीं।

जो ब्रह्मचारी रहता है, वह आनंदित रहता है, निर्भीक रहता है, सत्यप्रिय होता है। उसके संकल्प में बल होता है, उसका उद्देश्य ऊँचा होता है और उसमें दुनिया को हिलाने का सामर्थ्य होता है। स्वामी विवेकानंद को ही देखें। उनके जीवन में ब्रह्मचर्य था तो उन्होंने पूरी दुनिया में भारतीय अध्यात्मज्ञान का ध्वज फहरा दिया था, भारत के दिव्य ज्ञान का डंका बजा दिया था।

हे भारत के युवानों ! तुम भी उसी गौरव को हासिल कर सकते हो। यदि जीवन में संयम को अपना लो, सदाचार को अपना लो एवं समर्थ सद्गुरु का सान्निध्य पा लो तो तुम भी महान्-से-महान् कार्य करने में सफल हो सकते हो। लगाओ छलाँग... कस लो कमर... संयमी बनो... ब्रह्मचारी बनो और 'युवाधन सुरक्षा अभियान' के माध्यम से अपने भाई-बन्धुओं, मित्रों, पड़ोसियों, ग्रामवासियों, नगरवासियों, प्रांतवासियों को भी संयम की महिमा समझाओ और शास्त्र की इस बात को चरितार्थ करो :

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाक् भवेत्॥

'सभी सुखी हों, सभी निर्मल मानसवाले हों, सभी सबका मंगल देखें और दूसरों के दुःख में सहभागी हों, दुःखहर्ता हों।'

संत का निन्दक महा हत्यारा

आत्मवेत्ता ब्रह्मज्ञानी संतों की निन्दा करना यानी अपने ही आत्मदेव की निन्दा करने के बराबर है... अपने ही पैरों में कुल्हाड़ा मारने के बराबर है। संसार के अज्ञानी जीवों को यह ज्ञान नहीं होता अतः वे नादानी में संतों के बारे में कुछ-न-कुछ बोल बैठते हैं, निन्दा कर बैठते हैं अथवा निंदकों के चक्कर में आ जाते हैं। इतना ही नहीं, कई लोग तो अपने इस विषवमन का प्रचार-प्रसार भी जोर-शोर से करने लग जाते हैं। जन-समाज को ईश्वरीय मार्ग में, परम कल्याण के मार्ग में प्रेरित करनेवाले संतों का कुप्रचार करके जन-समाज को संतों से विमुख करने का घोर अपराध, जघन्य पाप करते हैं। शुरू में तो उनको ऐसे कुकर्मों के फल का पता नहीं चलता लेकिन बाद में प्रकृति कहो या कुदरत कहो या कर्म का सिद्धान्त कहो, यह ईश्वरीय कानून उन अभागों की खबर ले लेता है।

संत-महापुरुष यह जानते हैं इसलिए ऐसे नराधमों के लिए उनके हृदय में कारुण्य भी उमड़ता है और वे अपनी अमृतवाणी से लोगों को सावधान भी करते हैं कि : 'हे मूर्ख निंदकों ! तुम अपना आत्महनन करने से बचो।'

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में वशिष्ठजी कहते हैं : ''हे रामजी ! मैं बाजार से गुजरता हूँ तो मूर्ख लोग मेरे लिए क्या-क्या बोलते हैं, वह सब मुझे पता है। संत का एक भी सद्गुण है तो उसे लेना चाहिए, उन पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए।

संत तुलसीदासजी कहते हैं :

हरि हर निंदा सुनइ जो काना, होइ पाप गोघात समाना।
हरि गुरु निंदक दादुर होई, जनम सहस्र नर पावइ सोई॥

संत कबीरदासजी भी कहते हैं :

कबीरा निंदक ना मिलो, पापी मिलो हजार।
एक निंदक के माथ पर, लाख पापिन को भार॥

संतों की निन्दा करनेवाले, संतों के प्रति अपराध करनेवाले लोगों के कैसे हाल होते हैं, इसी विषय को लक्ष्य करके 'सुखमनी साहिब' में कहते हैं :

संत सरनि जो जनु परै । सो जनु उधरन हार ॥
संत की निंदा नानका । बहुरि बहुरि अवतार ॥
संत कै दूखनि आरजा घटै । संत कै दूखनि जम ते नही छुटै ॥
संत कै दूखनि सुखु सभु जाइ । संत कै दूखनि नरक महि पाइ ॥
संत कै दूखनि मति होइ मलीन । संत कै दूखनि सोभा ते हीन ॥
संत के हते कउ रखै न कोइ । संत कै दूखनि थान भ्रसटु होइ ॥
संत कृपाल कृपा जे करै । नानक संत संगि निंदकु भी तरै ॥
संत कै दूखन ते मुखु भवै । संत कै दूखनि काग जिउ लवै ॥
संत कै दूखनि सरप जोनि पाइ। संत कै दूखनि त्रिगद जोनि किरमाइ॥
संत कै दुखनि त्रिसना महि जलै । संत कै दूखनि सभ को छलै ॥
संत कै दूखनि तेजु सभु जाइ । संत कै दूखनि नीचु नीचाइ ॥
संत का निंदकु महा अतताई । संत का निंदकु खिनु टिकनु न पाई॥
संत का निंदकु महा हतिआरा । संत का निंदकु परमेसुरि मारा ॥
संत के निंदक कउ सरब रोग । संत के निंदक कउ सदा बिजोग ॥
संत की निंदा दोख महि दोखु। नानक संत भावै ता उसका भी होइ मोखु॥
संत का दोखी सदा अपवितु । संत का दोखी किसै का नही मितु ॥
संत के दोखी कउ डान लागै । संत का दोखी कउ सभ तिआगै ॥
संत का दोखी महा अहंकारी । संत का दोखी सदा बिकारी ॥
संत का दोखी जनमै मरै । संत की दूखना सुख ते टरै ॥
संत के दोखी कउ नाही ठाउ । नानक संत भावै ता लए मिलाइ ॥

स्वार्थी, अहंकारी अथवा दोषदृष्टिवाले निंदकों से बचने की सीख देकर संतों ने सज्जनों की बड़ी भारी सुरक्षा कर दी। 'श्रीरामचरितमानस' कहता है :

पर निंदा सम अघ न खगेसा।

पराई निंदा के समान कोई पाप नहीं। फिर वह भी संत की निंदा !

कबीरजी ने सत्य कहा है :

एक निंदक के माथ पर लाख पापिन को भार।

- सम्पादक

एकादशी माहात्म्य

[विजया एकादशी : १८ फरवरी २००१]

युधिष्ठिर ने पूछा : ''हे वासुदेव ! फाल्गुन के कृष्ण पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है और वह व्रत करने की विधि क्या है ? कृपा करके बताइए।''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''युधिष्ठिर ! एक बार नारदजी ने ब्रह्माजी से फाल्गुन के कृष्ण पक्ष की विजया एकादशी के व्रत से होनेवाले पुण्य के बारे में पूछा था और ब्रह्माजी ने इस व्रत के बारे में उन्हें जो कथा एवं विधि बताई थी, उसे सुनो :

ब्रह्माजी ने कहा : 'नारद ! यह व्रत बहुत ही प्राचीन, पवित्र और पापनाशक है। यह राजाओं को विजय प्रदान करती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

त्रेतायुग में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी जब लंका पर चढ़ाई करने के लिए समुद्र के किनारे पहुँचे तब उन्हें समुद्र को पार करने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। उन्होंने लक्ष्मणजी से पूछा : 'सुमित्रानन्दन ! किस उपाय से इस समुद्र को पार किया जा सकता है ? यह अत्यन्त अगाध और भयंकर जल-जन्तुओं से भरा हुआ है। मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं दिखायी देता, जिससे इसको सुगमता से पार किया जा सके।'

लक्ष्मणजी बोले : 'हे प्रभु ! आप ही आदिदेव और पुराण-पुरुष पुरुषोत्तम हैं। आपसे क्या छिपा है ? यहाँ से आधे योजन की दूरी पर कुमारी द्वीप में बकदाल्भ्य नामक मुनि रहते हैं। आप उन प्राचीन मुनीश्वर के पास जाकर उन्हीं से इसका उपाय पूछिए।'

श्रीरामचन्द्रजी महामुनि बकदाल्भ्य के आश्रम पहुँचे और उन्होंने मुनि को प्रणाम किया। महर्षि ने प्रसन्न होकर श्रीरामजी के आगमन का कारण पूछा।

श्रीरामजी बोले : 'ब्रह्मन् ! मैं लंका पर चढ़ाई

करने के उद्देश्य से अपनी सेना सहित यहाँ आया हूँ। मुने ! अब जिस प्रकार समुद्र पार किया जा सके, कृपा करके वह उपाय बताइए।'

बकदाल्भ्य मुनि ने कहा : 'हे श्रीरामजी ! फाल्गुन के कृष्ण पक्ष में जो 'विजया' नाम की एकादशी होती है, उसका व्रत करने से आपकी विजय होगी। निश्चय ही आप अपनी वानर सेना के साथ समुद्र को पार कर लेंगे। राजन् ! अब इस व्रत की फलदायक विधि सुनिए :

दशमी के दिन सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टी का एक कलश स्थापित करें। उस कलश को जल से भरकर उसमें पल्लव डाल दें। उसके ऊपर भगवान नारायण के सुवर्णमय विग्रह की स्थापना करें। फिर एकादशी के दिन प्रातःकाल स्नान करें। कलश को पुनः स्थापित करें। माला, चन्दन, सुपारी तथा नारियल आदि के द्वारा विशेष रूप से उसका पूजन करें। कलश के ऊपर सप्तधान्य और जौ रखें। गन्ध, धूप, दीप और भाँति-भाँति के नैवेद्य से पूजन करें। कलश के सामने बैठकर उत्तम कथा-वार्ता आदि के द्वारा सारा दिन व्यतीत करें तथा रात में भी वहाँ जागरण करें। अखण्ड व्रत की सिद्धि के लिए घी का दीपक जलाएँ। फिर द्वादशी के दिन सूर्योदय होने पर उस कलश को किसी जलाशय के समीप (नदी, झरने या पोखर के तट पर) स्थापित करें और उसकी विधिवत् पूजा करके देव-प्रतिमासहित उस कलश को वेदवेत्ता ब्राह्मण के लिए दान कर दें। कलश के साथ ही और भी बड़े-बड़े दान देने चाहिए। श्रीराम ! आप अपने सेनापतियों के साथ इसी विधि से प्रयत्नपूर्वक 'विजया' एकादशी का व्रत कीजिए। इससे आपकी विजय होगी।'

ब्रह्माजी कहते हैं : 'नारद ! यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने मुनि के कथनानुसार उस समय 'विजया' एकादशी का व्रत किया। उस व्रत के करने से श्रीरामचन्द्रजी विजयी हुए। उन्होंने संग्राम में रावण को मारा, लंका पर विजय पायी और सीता को प्राप्त किया। बेटा ! जो मनुष्य इस विधि से व्रत करते हैं, उन्हें इस लोक में विजय प्राप्त होती है और उनका परलोक भी अक्षय बना रहता है।'

युधिष्ठिर ! इस कारण 'विजया' का व्रत करना चाहिए। इस प्रसंग को पढ़ने और सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है।'' *('पद्म पुराण' से)*

रसायन चिकित्सा

रसायन चिकित्सा आयुर्वेद के अष्टांगों में से एक महत्त्वपूर्ण चिकित्सा है। रसायन का सीधा सम्बन्ध धातु के पोषण से है। यह केवल औषध-व्यवस्था न होकर औषधि, आहार-विहार एवं आचार का एक विशिष्ट प्रयोग है जिसका उद्देश्य शरीर में उत्तम धातुपोषण के माध्यम से दीर्घ आयुष्य, रोगप्रतिकारक शक्ति एवं उत्तम बुद्धिशक्ति को उत्पन्न करना है। स्थूल रूप से यह शारीरिक स्वास्थ्य का संवर्धन करता है परन्तु सूक्ष्म रूप से इसका सम्बन्ध मानस स्वास्थ्य से अधिक है। विशेषतः मेध्य रसायन इसके लिए ज्यादा उपयुक्त है। बुद्धिवर्धक प्रभावों के अतिरिक्त इसके निद्राकारक, मनोशांतिकर एवं चिन्ताहर प्रभाव भी होते हैं। अतः इसका उपयोग विशेषकर मानस विकारजन्य शारीरिक व्याधियों में किया जा सकता है।

रसायन सेवन में वय, प्रकृति, सात्म्य, जठराग्नि तथा धातुओं का विचार आवश्यक है। भिन्न-भिन्न वय तथा प्रकृति के लोगों की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होने के कारण तदनुसार किये गये प्रयोगों से ही वांछित फल की प्राप्ति होती है।

✼ १ से १० साल तक के बच्चों को १ से २ चुटकी वचाचूर्ण शहद में मिलाकर चटाने से बाल्यावस्था में स्वभावतः बढ़नेवाले कफ का शमन होता है, वाणी स्पष्ट व बुद्धि कुशाग्र होती है।

✼ ११ से २० साल तक के किशोरों एवं युवाओं को २-३ ग्राम बलाचूर्ण १-१ कप पानी व दूध में उबालकर देने से रस, मांस तथा शुक्रधातु पुष्ट होती हैं एवं शारीरिक बल की वृद्धि होती है।

✼ २१ से ३० साल तक के लोगों को १ चावल

के दाने बराबर शतपुटी लौह भस्म गोघृत में मिलाकर लेने से रक्तधातु की वृद्धि होती है। इसके साथ १ चम्मच आँवला चूर्ण सोने से पहले पानी के साथ लेने से नाड़ियों की शुद्धि होकर शरीर में स्फूर्ति व ताजगी का संचार होता है।

* ३१ से ४० साल तक के लोगों को शंखपुष्पी का १० से १५ मि.ली. रस अथवा उसका १ चम्मच चूर्ण शहद में मिलाकर देने से तनावजन्य मानसिक विकारों में राहत मिलती है। नींद अच्छी आती है। उच्च रक्तचाप कम करने एवं हृदय को शक्ति प्रदान करने में भी यह प्रयोग बहुत हितकर है।

* ४१ से ५० वर्ष की उम्र के लोगों को १ ग्राम ज्योतिष्मती चूर्ण २ चुटकी सोंठ के साथ गरम पानी में मिलाकर देने तथा ज्योतिष्मती के तेल से अभ्यंग करने से इस उम्र में स्वभावतः बढ़नेवाले वातदोष का शमन होता है एवं संधिवात, पक्षाघात (लकवा) आदि वातजन्य विकारों से रक्षा होती है।

* ५१ से ६० वर्ष की आयु में दृष्टिशक्ति स्वभावतः घटने लगती है जो १ ग्राम त्रिफला चूर्ण तथा आधा ग्राम सप्तामृत लौह गोघृत के साथ दिन में २ बार लेने से बढ़ती है। सोने से पूर्व २-३ ग्राम त्रिफला चूर्ण गरम पानी के साथ लेना भी हितकर है। गिलोय, गोक्षुर एवं आँवला से बना रसायन चूर्ण ३-१० ग्राम तक सेवन करना अति उत्तम है।

मेध्य रसायन : शंखपुष्पी, जटामांसी और ब्राह्मीचूर्ण समभाग मिलाकर १ ग्राम चूर्ण शहद के साथ लेने से ग्रहणशक्ति व स्मरणशक्ति में वृद्धि होती है। इससे मस्तिष्क को बल मिलता है, नींद अच्छी आती है एवं मानसिक शांति की प्राप्ति होती है।

आचार रसायन : केवल सदाचार के पालन से भी शरीर व मन पर रसायनवत् प्रभाव पड़ता है और रसायन के सभी फल प्राप्त होते हैं।

सत्यवादी, क्रोधरहित, अहिंसक, उदार, धीर, प्रियभाषी, अहंकाररहित, ब्रह्मचर्य का पालन व नित्य दान करनेवाला, गुरु एवं वयोवृद्ध तपस्वियों की पूजा तथा सेवा-सुश्रूषा में रत, संयमी, जप, तप एवं धर्मशास्त्रों का स्वाध्याय करनेवाला पुरुष नित्य रसायनसेवी ही है - ऐसा समझना चाहिए।

[संत श्री आसारामजी आश्रम संचालित धन्वन्तरि आरोग्य केन्द्र, अमदावाद।]

दिनांक : ८-०१-२००१

पूजनीय गुरुदेव श्री श्री आसारामजी बापू,

सादर पदनमस्कार व ॐ साँईं राम !

जनवरी २००१ की 'ऋषि प्रसाद' का संपादकीय (Editorial) पढ़कर लगा कि हम व हमारी संस्कृति को नष्ट नहीं होने दिया जायेगा। आपका व आपके सम्पादक का बहुत-बहुत धन्यवाद।

'इंडिया टुडे' में भगवान श्री सत्य साँईं बाबा के बारे में जो छपा था उसका जवाब देने में हम लोग असमर्थ व असहाय महसूस कर रहे थे। 'ऋषि प्रसाद' पढ़ने के बाद लगा कि हम सुरक्षित हैं।

भगवान श्री आसारामजी बापू ! आपसे नम्र निवेदन है कि आप योग द्वारा अपनी आयु बढ़ाते रहें व हम बच्चों की रक्षा व मार्गदर्शन करते रहें।

सादर दण्डवत प्रणाम व धन्यवाद !

आपके

- डॉ. सर्वेश व नीरु

शिष्य : भगवान श्री सिद्धेश्वर बाबा

श्री सिद्धेश्वर आश्रम, निगान, सोनीपत (हरियाणा).

*

दिनांक : १८-०१-२००१

श्रीमान् संपादक,

'ऋषि प्रसाद', अमदावाद।

महोदयजी,

सप्रेम साँईंराम...

'ऋषि प्रसाद' वर्ष-११, अंक ९७ जनवरी २००१ के हिन्दी संस्करण में आपने 'सत्य साँईं बाबा पर आरोपों की आँधी' इस लेख में भ्रामक आक्षेपों का जिस दृढ़ता के साथ खण्डन किया है, वह एक सामयिक और साहसिक कदम है।

मैं व्यक्तिगतरूप से आपके इस नैतिक कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए आश्वासन देता हूँ कि भविष्य में कभी इस प्रकार के घृणित और भ्रामक प्रचार की पुनरावृत्ति की गई तो विरोधस्वरूप आपके कंधे-से-कंधा मिलाकर हर प्रकार का सहयोग करने को तत्पर रहूँगा। इसी मंगल भावना के साथ आपको मेरा कोटिशः धन्यवाद। *साँईं सेवक,*

- देवेन्द्र बाबा,

साँईं सेवा केन्द्र, जनता स्टोर्स, गाडरवाड़ा, जि. नरसिंहपुर (म.प्र.).

कैन्सर से मुक्ति

पूज्य सद्गुरुदेव के श्रीचरणों में सादर प्रणाम्!

करीब ढाई वर्ष पूर्व मुझे मुँह का कैन्सर हो गया था। डॉक्टरों के बताए अनुसार मैंने बचने की आशा ही छोड़ दी थी। ऐसे समय में पूज्य बापू के सत्संग के द्वारा मुझे जल एवं तुलसी के प्रयोग की जानकारी मिली। प्रतिदिन प्रातःकाल चार गिलास जल पीना, तुलसी का प्रयोग एवं गुरुमंत्र का जप जारी रखा। आज मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। यह केवल पूज्य गुरुदेव की कृपा का ही चमत्कार है !

- सौ. शकुन्तला पाटिल, गाँधीनगर (गुज.).

*

गुरुकृपा से जीवन रक्षा

जून २००० की बात है। मेरा लड़का बीमार पड़ गया। बुखार के साथ शरीर में सूजन आ गयी। दो दिन बाद उसे अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा जहाँ उसकी हालत और बिगड़ गयी। दूसरे दिन डॉक्टरों ने मुझे अलग से बुलाकर कहा : ''आपके बच्चे को 'हाइड्रोपिया' हो गया है। इसे बचाना मुश्किल है। ९९% बचने की कोई उम्मीद नहीं है।'' यह सुन मैं हक्का-बक्का रह गया। बच्चे की वाणी बन्द हो गयी। वह पानी भी नहीं पी सकता था तथा उसकी साँसें रुक-रुककर आ रही थीं। मैंने और मेरी पत्नी ने बापूजी से प्रार्थना की : ''हे बापूजी ! अब आप ही इसके रखवाले हैं। हे करुणासागर! दया करना मेरे बापू!''

बापूजी ने हमारी करुण पुकार सुन ली। लड़का दस मिनट के बाद ही बोलने लगा और पानी माँगा। बापूजी की कृपा से वह दो दिन में ही ठीक हो गया। डॉक्टर दंग रह गये। तीसरे दिन उन्होंने आश्चर्यचकित होकर उसे अस्पताल से छुट्टी दे दी। बापूजी की यह करुणा-कृपा मैं भुलाये नहीं भूल सकता।

- उत्तमचंद शर्मा, कोटा (राज.).

* संस्था समाचार *

९ जनवरी : पूर्णिमा दर्शनोत्सव अमदावाद आश्रम में संपन्न हुआ। इस अवसर पर पूज्यश्री की अमृतवाणी पर आधारित ५ ऑडियो कैसेट (सुयशा : कब सुमिरोगे राम ?, ज्ञान की निगाह, हे मेरे साधक (ध्यान), वृत्ति-मीमांसा एवं प्रकृति से पार) व ५ ऑडियो सी.डी. (हरि ॐ गायेजा, हरि ॐ कीर्तन, भक्तिसागर भजन, गुरुशरण भजन एवं भक्ति आराधना भजन) का विमोचन हुआ।

१० जनवरी : अखिल भारतीय योग वेदान्त सेवा समिति की देश भर में फैली ११०० शाखाओं की वार्षिक बैठक संपन्न हुई जिसमें पूर्व कार्यक्रमों की समीक्षा व नये कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की गई। युवावर्ग के नैतिक उत्थान हेतु अनेक कार्यक्रम तैयार किये गये जिनको समिति के सभी सदस्यों ने कार्यान्वित करने की तत्परता दिखाई।

११ से १४ जनवरी : चार दिवसीय 'मौन साधना शिविर' पूज्य गुरुदेवश्री की उपस्थिति में संपन्न हुआ। इस अभूतपूर्व शिविर में देश केविभिन्न भागों से अध्यात्म के जिज्ञासु साधक-वृन्द आये और पूज्यश्री की मौन उपस्थिति में अन्य शिविरों की अपेक्षा अधिक आध्यात्मिक लाभ का अनुभव किया।

महाकुंभ प्रयाग से प्राप्त समाचार के अनुसार वहाँ वीडियो प्रोजेक्टर द्वारा पूज्यश्री के सत्संग-प्रवचन रोज आयोजित होते हैं। वहाँ बड़ी विशाल संख्या में जनता आती है। लोगों को यह कहते सुना गया कि : 'बापूजी के वीडियो प्रोजेक्टर प्रवचन में इतनी बड़ी संख्या में लोग उपस्थित हैं ! अगर आज स्वयं बापूजी उपस्थित होते तो... ?'

महाकुंभ में साढ़े चार लाख वर्ग फीट क्षेत्र में सत्संग, आवास व अन्य सुविधाओं का प्रबंध किया गया है जिसका सहस्रों साधक व श्रद्धालु भक्तवृन्द लाभ ले रहे हैं।

२८ जनवरी : शाम को पूज्यश्री प्रयाग कुंभ में पधारे। कई दिनों से पूज्यश्री के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए लालायित धर्मप्रेमी जनता को आखिर दिनांक २९ और ३० को पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग एवं दिनांक ३१ जनवरी को मंत्रदीक्षा का भरपूर लाभ मिला।

२७ जनवरी : गुजरात राज्य में आये हुए महा विनाशकारी भूकंप से प्रभावित लोगों की सेवा में, संत श्री आसारामजी आश्रम की ओर से युद्धस्तर पर राहतकार्य किये जा रहे हैं। आश्रम द्वारा मुख्य रूप से भुज, सुरेन्द्रनगर, रापर एवं मोरबी में राहतकार्य चलाया जा रहा है। पूज्य बापू के साधकों की मितव्ययता, कार्य दक्षता एवं ईमानदारी से प्रभावित होकर गुजरात सरकार ने भुज स्थित 'संत श्री आसारामजी राहत कैम्प' को पूरे भुज विस्तार की सहायता-व्यवस्था की मुख्य जिम्मेदारी दी है। देश-विदेश से आयी हुई समस्त राहत सामग्री यहाँ पर सौंपी जा रही है तथा जनता में उसका आवश्यकतानुसार वितरण किया जा रहा है। सामग्री को जरूरतमंदों तक ईमानदारीपूर्वक पहुँचाया जाय इस बात को मुख्य रूप से ध्यान में रखा जा रहा है। इसके लिए सेवाभावी साधक स्वयं गाँव-गाँव जाकर जरूरतमंदों तक सहायता सामग्री पहुँचा रहे हैं।

संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद से खाद्य सामग्री के पैकेट्स, पानी के पाउच एवं बोतलें, सुखड़ी, नमकीन, टेन्ट, बूँदी, अनाज एवं मृतकों के दाह संस्कार के लिए लकड़ी से भरे ट्रक भेजे जा

रहे हैं । देशभर में फैली ११०० श्री योग वेदान्त सेवा समितियों एवं आश्रमों से भी भूकंप पीड़ितों के लिए सहायता-सामग्री प्राप्त हो रही है। कहीं से गर्म ऊनी कपड़े व कम्बल, कहीं से अनाज तो कहीं से लकड़ी से भरे ट्रक सेवाधारियों के साथ भेजे जा रहे हैं।

आश्रम का 'सचल चिकित्सालय' आयुर्वेद, होम्योपैथी एवं ऐलोपैथी के ७५ विशेषज्ञों और अनुभवी डॉक्टरों के साथ सेवारत है। इसमें हड्डियों के विशेषज्ञ भी विशेष रूप से सेवा दे रहे हैं।

दिनांक : १ फरवरी को श्रद्धेय श्री नारायण साँई ने भुज के असरग्रस्त क्षेत्रों का दौरा किया तथा भूकंप सहायता-व्यवस्था का निरीक्षण किया। उन्होंने मुख्यमंत्री श्री केशुभाई से मुलाकात भी की जिसमें पुनर्वास संबंधी योजनाओं पर विचार-विमर्श किया गया।

दिनांक : ३ फरवरी को पूज्य बापू स्वयं भी भुज पहुँचे। पूज्यश्री के साथ विश्व हिन्दू परिषद के श्री अशोक सिंघल भी थे। पूज्य बापू ने सूक्ष्मता से सहायता-व्यवस्था का निरीक्षण किया तथा उसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए उचित मार्गदर्शन दिया। पूज्यश्री ने भूकंप पीड़ितों का हालचाल पूछा व इस बात की विशेष जाँच की कि राहत सामग्री उन तक ईमानदारीपूर्वक पहुँचती है या नहीं।

भूकंप के सदमे से भयभीत लोगों को हिम्मत बँधाते हुए पूज्यश्री ने कहा : **''जो हो गया वह भी देख लिया, जो हो रहा है उसे भी देख रहे हैं और जो होगा उसे भी देख लेंगे। परिस्थितियों से डरने-घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसे शरीर हमने हजारों बार पाये और छोड़े परन्तु हमारा आज तक कुछ नहीं बिगड़ा। शरीर नश्वर है। उसे तो नष्ट होना ही है परन्तु आत्मा शाश्वत् है, अमर है और वह आत्मा हमारा अपना आपा है। फिर डरने की क्या बात है? भगवद् स्मरण करें।''**

पूज्यश्री नारायण साँईं की निगरानी में १०० भूकंपग्रस्त गाँवों में ७०० सेवाधारी साधकों-भक्तों द्वारा चार लाख लोगों की सेवा की गई। यहाँ श्री नारायण साँईं के द्वारा सत्संग हुआ। उनके सत्संग से भयग्रस्त लोग निर्भय बने।

मात्र लौकिक सहायता करने से ही संसार के दुःखों से छुटकारा नहीं मिल सकता। जब तक मनुष्य की दृष्टि नहीं बदली तब तक उसकी इच्छाएँ उसे सदा भिखारी ही बनाकर रखेंगी। कितनी भी बाह्य मदद उसको पूर्ण संतुष्ट एवं सुखी नहीं कर सकती। केवल एक आत्मज्ञान से ही मनुष्य के सारे दुःख सदा के लिए समाप्त हो सकते हैं। मनुष्य की आध्यात्मिक सहायता करना ही उसकी सबसे बड़ी सेवा है। मनुष्य को आत्मा का जो ज्ञान दे सकता है वही समाज का सबसे बड़ा हितैषी है।

इस भीषण तांडव से हुई हानि पूरी हो, कोई हताशा-निराशा या भय का शिकार न बना रहे, लोग साहसी एवं मानसिक रूप से शक्तिशाली बनकर इस हादसे से उबर सकें इसके लिए भुज के तमाम क्षेत्रों में सत्संग-कीर्तन की भक्ति-जागृति टुकड़ियाँ भेजी जा रही हैं।

'ऋषि प्रसाद' सेवाधारियों के लिए स्वर्णिम अवसर

'ऋषि प्रसाद' के माध्यम से अपने पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी को घर-घर तक पहुँचाने का जो पुनीत कार्य आप कर रहे हैं उससे समाज व राष्ट्र को कितना लाभ हो रहा है यह लाबयान है। इसके प्रचार-प्रसार से कितने ही घर बरबाद होने से बच गये, कितने ही लोगों की डूबती जीवन-नैया किनारे लग गयी, आपराधिक किस्म के लोग सदाचारी व समाज-सेवी हो गये, नास्तिक आस्तिक हो गये, पतन की राह जानेवाले नैतिक-आध्यात्मिक उन्नति की ओर चल पड़े, आलसी-प्रमादी एवं पलायनवादी लोग कर्मनिष्ठ बन गये अर्थात् कुल मिलाकर लाखों-लाखों परिवारों के साथ-साथ समाज एवं राष्ट्र का अभ्युत्थान हो रहा है। व्यक्ति की उन्नति में समाज की उन्नति और समाज की उन्नति में राष्ट्र की उन्नति निहित है। इस प्रकार आप गुरुभक्ति एवं गुरुसेवा के साथ-साथ राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रसेवा एवं समाजसेवा का अमित पुण्यलाभ भी घर बैठे ले रहे हैं।

यद्यपि 'ऋषि प्रसाद' आज चौदह लाख से भी अधिक प्रतियाँ छपने का उच्चांक प्राप्त कर चुकी है लेकिन पूज्यश्री के संदेश को हमें अभी कराड़ों लोगों तक पहुँचाना है... गुमराह एवं भूले-भटके लोगों तक शीघ्रातिशीघ्र पहुँचना है ताकि उनका भी जीवन सुखमय, समृद्धमय एवं उन्नत हो।

वे साधक धनभागी हैं जो सांसारिक कार्यों से समय निकालकर ईश्वर एवं गुरु की प्रसन्नता हेतु जन-जागृति के दैवी कार्य में उत्साह एवं तत्परतापूर्वक लगे रहते हैं। यह दैवी कार्य और भी अधिक तीव्र गति से आगे बढ़े, यही प्रार्थना !

'ऋषि प्रसाद' स्वर्ण पदक प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'ऋषि प्रसाद' के सभी सन्निष्ठ व तत्पर सेवादारों को उनके द्वारा बनाये गये सदस्यों की संख्या के अनुसार पाँच श्रेणियों में सम्मानित व पुरस्कृत किया जायेगा।

प्रथम श्रेणी : ११ हजार से ज्यादा सदस्य संख्या
द्वितीय श्रेणी : ५००० से ११००० तक सदस्य संख्या
तृतीय श्रेणी : १००० से ५००० तक सदस्य संख्या
चतुर्थ श्रेणी : ५०० से १००० तक सदस्य संख्या
पंचम श्रेणी : ३०० से ५०० तक सदस्य संख्या

नोट : प्रतियोगिता में भाग लेनेवाले नये सेवादार अपना सेवादार क्रमांक व रसीद बुकें अहमदाबाद आश्रम से प्राप्त कर सकते हैं।

पूज्य बापू का कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	स्थान	संपर्क फोन
८ से ११ फरवरी २००१	दक्षिण दिल्ली	पूनम दर्शन व सत्संग	पुष्प विहार (साकेत) नई दिल्ली।	(०११)५७२९३३८, २४६५३०२.

पूर्णिमा दर्शन : ८ फरवरी २००१ दक्षिण दिल्ली में।

कच्छ–भुज के विभिन्न इलाकों में आश्रम के ७०० सेवाधारियों के साथ सेवा व सत्संग में रत श्री नारायण साईं ने भूकंप पीड़ितों की सेवा के साथ सांत्वना का सत्संग भी दिया।

पूज्य बापूजी के भुज आगमन पर उन्हें सेवाकार्यों की जानकारी देते हुए श्री नारायण साँईं...
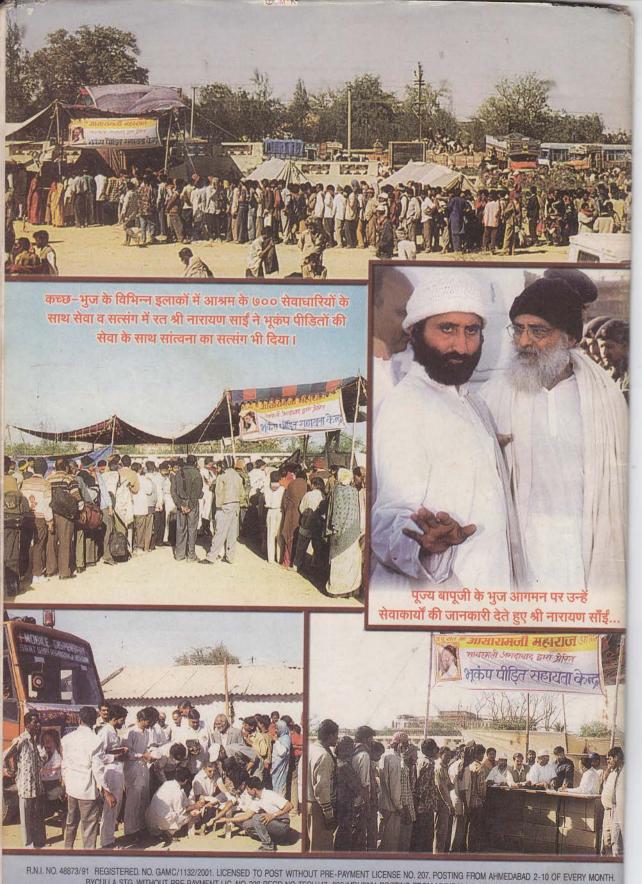
R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED. NO. GAMC/1132/2001. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2001 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2001 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2001 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.